न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता ,न्यायमूर्ति जी.एस संधावलिया और न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह के समक्ष

महाराणा प्रताप परोपकारी ट्रस्ट (पंजीकृत) – याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य – प्रतिवादी

सीडब्ल्यूपी 2007 की संख्या 6860

24 दिसंबर 2014

ए. भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्वास अधिनियम, 2013 में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार - धारा 24 (2) - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (निरस्त) - धारा. 4, 6 और 11 - सामान्य खंड अधिनियम, 1897 - धारा. 6 - कानूनी कल्पना - अधिग्रहण की कार्यवाही का ख़त्म होना - 1894 अधिनियम के तहत अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू -अवॉर्ड 2013 अधिनियम की शुरुआत से पांच साल या उससे अधिक पहले बनाया गया था - भौतिक कब्जे लेने या भुगतान करने में राज्य की विफलता मुआवजा, अवॉर्ड के अनुसार - किसी भी न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के बावजूद, अधिग्रहण की कार्यवाही व्यपगत हो जाएगी - कार्यवाही को समाप्त करने के अधीन, यह किसी भी 1894 के अधिनियम के तहत अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित अर्जित या देय नहीं करेगा, - यथोचित परिवर्तनों के साथ यह सभी मामलों पर लागू होता है, यहां तक

कि जहां रिट याचिकाएं खारिज कर दी गई हैं। - धारा 24 में रिट याचिकाओं के संबंध में कोई अपवाद नहीं है, जिनके पास है पहले खारिज कर दिया गया - संदर्भ उत्तर दिया गया (बहुमत का नजरिया).

फैसला किया (न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता के अनुसार,, न्यायमूर्ति जी.एस. संधावलिया सहमत), यह कोई संदेह नहीं है कि धारा 24 द्वारा एक कानूनी कल्पना का परिचय दिया गया है जो अधिग्रहण की कार्यवाही कानून के संचालन से व्यपगत है यानी जहां अधिनियम के प्रारंभ होने से पांच साल या उससे अधिक पहले अवॉर्ड दिया गया हो, लेकिन भूमि का भौतिक कब्ज़ा नहीं लिया गया हो या मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया हो।

(पैरा 45)

आगे फैसला किया कि राज्य द्वारा कब्ज़ा लेने या मुआवजे का भुगतान करने में विफलता की स्थिति में कार्यवाही समाप्त होने के अधीन, पुराने अधिनियम के तहत प्रावधान, अर्जित, अर्जित या अर्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या देयता को प्रभावित नहीं करेंगे।

इसलिए, कार्यवाही, जो पुराने अधिनियम के तहत स्थगन का विषय थी, पुराने अधिनियम के प्रावधानों द्वारा ही शासित होगी। **भरत कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य** (2014) 6 एससीसी 586, बिमला देवी का मामला और **श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन बनाम तमिलनाडु और अन्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के आलोक में

10-9-2014 के निर्णय हमें कानून के अमूर्त प्रस्ताव पर अन्य निर्णयों का पालन करना मुश्किल लगता है ।

(पैरा 62 और 63)

इसके अलावा, यह माना गया कि ऊपर दर्ज किए गए निष्कर्ष यथोचित परिवर्तनों के साथ सभी मामलों पर लागू होंगे, जहां रिट याचिकाएं भी खारिज कर दी गई हैं। अधिनियम की धारा 24 उन रिट याचिकाओं के संबंध में कोई अपवाद नहीं बनाती है, जिन्हें पहले खारिज कर दिया गया है ।

(पैरा 64)

(न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह के अनुसार) माना गया कि 2013 अधिनियम की धारा 24(2) गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है, इसलिए, इस मामले में क्षेत्र रखने वाले किसी भी अन्य अधिनियम का धारा 24(2) के प्रावधानों पर कोई अधिभावी प्रभाव नहीं होगा। 2013 अधिनियम के. इस प्रकार, उन मामलों में पुराने अधिनियम के लागू होने के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठता है जहां विभिन्न न्यायालयों द्वारा स्थगन आदेश दिए गए थे। इसलिए, मेरा सुविचारित विचार है कि 24-1-2014 के पुणे नगर निगम और अन्य बनाम हरकचंद मिसिरिमल सोलंकी और अन्य, **भारत संघ बनाम शिव राज सिंह और अन्य (2014) 6 एससीसी 564** और **श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन बनाम तमिलनाडु राज्य** और अन्य में निर्धारित कानून के अनुसार, 10-9-2014 का निर्णय, सामान्य धारा अधिनियम, 1897 की धारा 6, 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के प्रावधानों के अधीन है।एक्टस क्यूरिया नेमिनेम ग्रेवबिट का सिद्धांत 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के

प्रावधानों पर लागू नहीं होता है और शिव राज के मामले (ऊपर), पुणे नगर निगम के मामले (ऊपर) और श्री बालाजी नगर रेजिडेंशियल एसोसिएशन के मामले (ऊपर) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार में, 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के तहत 5 साल की अवधि निर्धारित करने के लिए न्यायालयों द्वारा दी गई रोक की अवधि को बाहर नहीं किया जाना चाहिए।

2013 अधिनियम की धारा 24(2) का लाभ उन भूमि मालिकों पर भी लागू है जिनकी रिट याचिकाएं पहले ही स्पष्ट या अप्रत्यक्ष रूप से खारिज कर दी गई हैं और जिन्होंने अंतरिम रोक के आधार पर राज्य को उनकी अर्जित भूमि पर कब्जा करने की अनुमति नहीं दी है या अस्वीकार कर दिया है। कलेक्टर द्वारा प्रस्तावित मुआवजा प्राप्त करने के लिए, बशर्ते कि 2013 अधिनियम की धारा 24(2) में निर्धारित शर्तें पूरी हों।

(पैरा 81 से 83)

बी. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - क़ानूनों की व्याख्या - शब्दों को उनके सामान्य प्राकृतिक व्याकरणिक अर्थ दिए जाने चाहिए, बशर्ते कि विधायी शक्ति प्रदान करने वाले संवैधानिक अधिनियम में शब्दों का अर्थ लगाते समय, शब्दों पर सबसे उदार निर्माण किया जाना चाहिए ताकि उसका व्यापकतम आयाम में प्रभाव हो सके - लाभकारी कानून को उदार व्याख्या मिलनी चाहिए ताकि क़ानून के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके।

माना गया (न्यायाधीश हेमंत गुप्ता के अनुसार, न्यायमूर्ति जी.एस. संधावालिया की सहमति के साथ), कि व्याख्या का मूल नियम यह है कि शब्दों को उनके सामान्य प्राकृतिक व्याकरणिक अर्थ दिए जाने चाहिए, बशर्ते कि विधायी शक्ति प्रदान करने वाले संवैधानिक अधिनियम में शब्दों का अर्थ लगाना सबसे अधिक हो शब्दों पर उदार निर्माण किया जाना चाहिए ताकि उनका उनके व्यापक आयाम में प्रभाव हो सके। लाभकारी कानून की उदार व्याख्या होनी चाहिए ताकि क़ानून के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके।

सी. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141 - बाध्यकारी उदाहरण

- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होते हैं

- यदि सर्वोच्च न्यायालय की सह-समान शक्ति वाली पीठों के निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है, दोनों ही बाध्यकारी उदाहरण हैं, तो यह उच्च न्यायालय के लिए उन निर्णयों का पालन करने के लिए खुला है, जिन्हें वह उचित समझता है।

माना गया (न्यायमूर्ति हेमन्त गुप्ता के अनुसार, न्यायमूर्ति जी.एस. संधावालिया की सहमति के साथ), कि सुप्रीम कोर्ट की एक बेंच द्वारा दिया गया निर्णय सह-समान शक्ति वाली बेंच पर बाध्यकारी है। हालाँकि, किसी भी संदेह की स्थिति में, समान संख्या वाली पीठ द्वारा मामले को बड़ी पीठ के पास भेजा जा सकता है। हालाँकि, यह बड़ी बेंच है, जो कम कोरम की बेंच द्वारा व्यक्त किए गए विचार के विपरीत विचार कर सकती है। लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं। केवल यह तथ्य कि कोई तर्क नहीं उठाया गया था या तर्क उच्च न्यायालय की राय में भ्रामक है या क़ानून के किसी विशेष प्रावधान पर बेंच द्वारा विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया था, ऐसा कोई आधार नहीं है जिसके आधार पर बाध्यकारी मिसाल को नजरअंदाज किया जा सके। उच्च न्यायालय के लिए उचित मार्ग न्यायालय की छोटी पीठों की अपेक्षा बड़ी पीठ द्वारा व्यक्त की गई राय का पता लगाना और उसका पालन करना है। बड़ी बेंच द्वारा व्यक्त की गई राय पर किसी एक पंक्ति को इधर-उधर पढ़कर नहीं, बल्कि पूरे फैसले को पढ़कर ही पहुंचा जा सकता

है। यदि सर्वोच्च न्यायालय की सह-समान शक्ति वाली पीठों के निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है, तो दोनों ही बाध्यकारी उदाहरण हैं, यह उच्च न्यायालय के लिए उन निर्णयों का पालन करने के लिए खुला है, जिन्हें वह उचित समझता है।

मैसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड डूंडाहेड़ा बनाम उमराव और अन्य 1981 PLR 335 मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मुद्दे की जांच की है कि सुपीरियर कोर्ट द्वारा पारित विरोधाभासी निर्णयों में से किसका पालन किया जाना है। यह माना गया कि उच्च न्यायालय को उस फैसले का पालन करना चाहिए जो उसे कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है।

(पैरा 42,43)

माना गया (न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह की असहमति के अनुसार), कि इन सिद्धांतों को कानून के स्पष्ट प्रावधानों या उच्च न्यायालय के किसी भी आधिकारिक फैसले को इस आधार पर दरकिनार करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है कि एक या अन्य कानूनी सिद्धांतों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था। चूँकि वे सभी मुद्दे, जो उठाए गए हैं या जिन्हें उठाया जाना चाहिए था, उठाए गए, विचार किए गए और निर्णय लिए गए माने जाते हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी है।

(पैरा 80)

एम.एल. सरीन, वरिष्ठ अधिवक्ता, हेमंत सरीन और नितिन सरीन के साथ, अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के लिए.

श्री शैलेन्द्र जैन, वरिष्ठ अधिवक्ता, साथ में श्री मन्नू चौधरी, अधिवक्ता।

श्री आर.एस. राय, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री राजीव आनंद और हर्ष बंगर, अधिवक्ता के साथ

पुनीत बाली, वरिष्ठ अधिवक्ता, परवीन जैन और अरुण गुप्ता के साथ, अधिवक्ता.

दिनेश ठाकुर, फतेह सई के साथ वरिष्ठ अधिवक्ता मोहन जैन और अरस्तु चोपड़ा, अधिवक्ता.

अश्वानी कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता, आशीष चोपड़ा के साथ और स्तुति टंडन, अधिवक्ता.

आदर्श जैन, एडवोकेट.

[भूमि मालिकों के लिए]

एच.एस. हूडा, महाधिवक्ता, हरियाणा, कमल सहगल, अतिरिक्त महाधिवक्ता, हरियाणा के साथ.

अशोक अग्रवाल, महाधिवक्ता, पंजाब, पीएस बाजवा, अतिरिक्त महाधिवक्ता, पंजाब के साथ

वरिष्ठ अधिवक्ता संजीव शर्मा के साथ शेखर वर्मा ,अधिवक्ता, यू.टी., चंडीगढ़ के लिए.

अरुण वालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता, गितिश भारद्वाज और सैरी के साथ दमन राठौर, एचयूडीए के लिए अधिवक्ता.

प्रतिवादी नंबर 4 के लिए वकील राजेश श्योराण।

न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता

1. 2007 के सीडब्ल्यूपी संख्या 6860 में, धारा 24 की व्याख्या भूमि में उचित मुआवज़े और पारदर्शिता का अधिकार अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 (संक्षेप में अधिनियम) इस खंडपीठ की राय का विषय है डिविजन बेंच द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.7.2014, जिनमें से एक हम (हेमंत गुप्ता, जे.) एक सदस्य थे ताकि यह जांच की जा सके कि क्या **भारत संघ बनाम शिव राज एवं अन्य**[1] मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश, उन मामलों पर लागू होंगे जहां न्यायालय द्वारा एक अंतरिम आदेश पारित किया गया है । दूसरे शब्दों में, क्या भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (संक्षेप में 'पुराना अधिनियम') के तहत शुरू की गई कार्यवाही की समाप्ति के लिए पांच साल की अवधि निर्धारित करने के लिए न्यायालय द्वारा दी गई रोक की अवधि को बाहर रखा जाना आवश्यक है।

[1] (2014) 6 एससीसी 564

2. उक्त प्रश्न इस तथ्य से उत्पन्न होते हैं कि वर्तमान रिट याचिका पुराने अधिनियम की धारा 4 और 6 दिनांक 21.3.2006 और 20.3.2007 के तहत अधिसूचनाओं को चुनौती देते हुए दायर की गई थी। रिट याचिका में, 8.5.2007 को बेदखली पर रोक का आदेश दिया गया था। कहा हुआ आदेश आज तक जारी है

3. इसके बाद, एक और प्रश्न "क्या अधिनियम की धारा 24(2) का लाभ उन भूमि मालिकों को भी स्वीकार्य है, जिनकी रिट याचिकाएं पहले ही खारिज कर दी गई हैं, और जिन्होंने अंतरिम रोक के आधार पर राज्य को अनुमति नहीं दी है उनकी जमीन पर कब्ज़ा करने के लिए और कलेक्टर द्वारा मुआवजे की पेशकश को अस्वीकार कर दिया। 2014 के सीडब्ल्यूपी नंबर 12066 (**महिंदर यादव बनाम बनाम हरियाणा राज्य**) को भी बड़ी बेंच की राय के लिए भेजा गया था, दिनांक 11.7.2014 के आदेश द्वारा। उक्त रिट याचिका में यह तथ्य सामने आया है कि पिछली रिट याचिका (सीडब्ल्यूपी संख्या 13277, 1999) में, पुराने अधिनियम के तहत धारा 4 और 6 दिनांक 8.3.1989 और 7.3.1990 के तहत अधिसूचनाएं चुनौती का विषय थीं। इसके बाद, अवॉर्ड संख्या 11 दिनांक 18.3.1991 और अवॉर्ड नंबर 11 दिनांक 5.3.1992 की घोषणा की गई । याचिकाकर्ता द्वारा दायर पहले की रिट याचिका को अधिग्रहण के संबंध में 3.10.2013 को खारिज कर दिया गया था, लेकिन पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति के अनुसार वैकल्पिक साइट के आवंटन के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के निर्देश के साथ। वर्तमान रिट याचिका में, याचिकाकर्ताओं का दावा है कि अधिनियम की धारा 24 के मद्देनजर, अधिग्रहण की कार्यवाही को समाप्त माना जाएगा क्योंकि अधिनियम के शुरू होने से पहले पांच साल के भीतर भूमि का कब्जा नहीं लिया गया था।

4. उठाए गए मुद्दे काफी महत्वपूर्ण हैं और हमें भूमि मालिकों और पंजाब और हरियाणा के महाधिवक्ता की ओर से वरिष्ठ वकीलों की सहायता का लाभ मिला। हमने उन सभी वकीलों को सुना है जो इस मामले पर बहस करना चाहते थे।

5. इस स्तर पर, पुराने अधिनियम के कुछ प्रावधान निकाले जाते हैं, उठाए गए मुद्दों को समझने के लिए.

6. **"6. घोषणा कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि की आवश्यकता है। –**

(1) इस अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों के अधीन, जब उपयुक्त सरकार धारा 5ए, उपधारा (2) के तहत बनाई गई रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद संतुष्ट हो जाती है कि किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किसी विशेष भूमि की आवश्यकता है , या किसी कंपनी के लिए, ऐसी सरकार के सचिव या उसके आदेशों को प्रमाणित करने के लिए विधिवत अधिकृत किसी अधिकारी के हस्ताक्षर के तहत एक घोषणा की जाएगी, किसी के विभिन्न पार्सल के संबंध में समय-समय पर अलग-अलग घोषणाएं की जा सकती हैं। धारा 4, उप-धारा (1) के तहत एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली भूमि, भले ही धारा 5 ए, उप-धारा (2) के तहत एक रिपोर्ट या अलग-अलग रिपोर्ट (जहाँ भी आवश्यक हो) बनाई गई हो या बनाई गई हो

बशर्ते कि धारा 4, उपधारा (1) के तहत अधिसूचना द्वारा कवर की गई किसी विशेष भूमि के संबंध में कोई घोषणा नहीं की जाएगी जो-

*(i)*भूमि अधिग्रहण (संशोधन और मान्यकरण) अध्यादेश, 1967 के प्रारंभ होने के बाद लेकिन भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 के प्रारंभ होने से पहले प्रकाशित, प्रकाशन की तारीख से तीन वर्ष की समाप्ति के बाद की हो ,या

(ii) भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 के प्रारंभ होने के बाद प्रकाशित, अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के बाद की हो

आगे xx xx xx प्रदान किया.

स्पष्टीकरण 1: पहले प्रावधान के द्वारा उल्लिखित किसी भी अवधि की गणना करते समय, ध्यान में रखा जाएगा कि किसी भी कोर्ट के आदेश द्वारा जारी किए गए सेक्शन 4, उप-अनुभाग (1) के तहत जारी अधिसूचना के अनुसरण में लिये जाने वाले किसी कार्रवाई या प्रक्रिया के लिए, जिसे विराम द्वारा रोका गया है, उस अवधि को बाहर किया जाएगा।

स्पष्टीकरण 2. - xx xx xx

(3) xx xx xx

11. **कलेक्टर द्वारा पूछताछ और अवॉर्ड। –**

(1) जिस दिन इतना तय हो, या किसी अन्य दिन जिस दिन जांच हो स्थगित कर दिया गया है, कलेक्टर पूछताछ करने के लिए आगे बढ़ेगा आपत्तियां (यदि कोई हो) जो किसी भी व्यक्ति ने रुचि ली है माप के लिए धारा 9 के तहत दिए गए नोटिस के अनुसार धारा 8 के तहत बनाया गया है, और भूमि के मूल्य में और पर धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख, उप-खंड (1), और व्यक्तियों के संबंधित हितों में मुआवजे का दावा करना, और उसके तहत एक अवॉर्ड देना होगा का हाथ-

(i) xx xx xx

11A. वह अवधि जिसके भीतर एक अवॉर्ड बनाया जाएगा। –

(1) कलेक्टर के प्रकाशन की तारीख से दो साल की अवधि के भीतर धारा 11 के तहत एक अवॉर्ड देगा घोषणा और यदि उस अवधि के भीतर कोई अवॉर्ड नहीं दिया जाता है, तो भूमि के अधिग्रहण की पूरी कार्यवाही समाप्त हो जाएगी:

बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां भूमि अधिग्रहण शुरू होने से पहले उक्त घोषणा प्रकाशित की गई हो (संशोधन) अधिनियम, 1984, अवॉर्ड एक के भीतर किया जाएगा इस तरह के प्रारंभ से दो साल की अवधि.

स्पष्टीकरण. संदर्भित दो वर्षों की अवधि की गणना में इस खंड में वह अवधि जिसके दौरान कोई कार्रवाई या कार्यवाही उक्त घोषणा के अनुसरण में लिया जाना है न्यायालय के एक आदेश को बाहर रखा जाएगा.

16. कब्जा करने की शक्ति

जब कलेक्टर ने धारा 11 के तहत एक अवॉर्ड दिया है, तो उन्होंने भूमि पर कब्जा कर सकते हैं, जो बनियान पर कब्जा कर लेगा पूरी तरह से सरकार में, सभी एन्कम्ब्रेन्स से मुक्त

अंतिम प्रश्न पर आते हुए, श्री राव ने जोरदार आग्रह किया कि शेनॉय एंड कंपनी बनाम सीटीओ, (1985)2 एससीसी 512 पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि इसमें रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत सहित विभिन्न सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा गया है। लेकिन इस न्यायालय के फैसले की जांच करने पर, विशेष रूप से, संविधान

के अनुच्छेद 141 के प्रावधानों के संबंध में निष्कर्ष, और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसे लागू करने पर, हमें नहीं लगता कि कोई मामला बनाया गया है शेनॉय मामले (सुप्रा) को पुनर्विचार के लिए एक बड़ी बेंच के पास भेजने की मांग। दूसरी ओर, हम शेनॉय मामले में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। शेनॉय में न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 141 की प्रयोज्यता और उन मामलों पर इसके प्रभाव पर विचार कर रहा था, जिनके खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई थी। देश का एक कानून हर किसी पर शासन करेगा, और निर्णय के सिद्धांत पर विचार न करना उक्त निर्णय पर पुनर्विचार करने का आधार नहीं होगा।

विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अश्विनी कुमार ने स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम विश्वदर्शन **डिस्ट्रीब्यूटर (पी) लिमिटेड, (1995)1 एससीसी 259** का हवाला देते हुए कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में, सभी उच्च न्यायालय सहित नागरिक या न्यायिक प्राधिकरणों को संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की सहायता के लिए कार्य करने का आदेश दिया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि शिव राज और श्री बालाजी के मामलों (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश उच्च न्यायालय के लिए एक आदेश है, इसलिए उच्च न्यायालय के लिए इसका अक्षरशः पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

31. न्यायालय में मुआवजे या जमा का भुगतान

(1) धारा 11 के तहत एक पुरस्कार देने पर, कलेक्टर पुरस्कार के अनुसार उसके हकदार इच्छुक व्यक्तियों को उसके द्वारा दिए गए मुआवजे का भुगतान करेगा, और

उन्हें तब तक भुगतान करेगा जब तक कि अगले उपधारा में उल्लिखित किसी एक या अधिक आकस्मिकताओं से रोका न जाए।

(2) यदि वे इसे प्राप्त करने के लिए सहमति नहीं देंगे, या यदि भूमि को हस्तांतरित करने के लिए कोई सक्षम व्यक्ति नहीं है, या यदि मुआवजा प्राप्त करने के अधिकार या इसके बंटवारे के संबंध में कोई विवाद है, तो कलेक्टर राशि जमा करेगा न्यायालय में मुआवज़ा जिसमें धारा 18 के तहत एक संदर्भ प्रस्तुत किया जाएगा:

बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति रुचि रखने के लिए भर्ती हो सकता है राशि की पर्याप्तता के विरोध में इस तरह के भुगतान:
बशर्ते कि इच्छुक व्यक्ति स्वीकार किया गया कोई भी व्यक्ति राशि की पर्याप्तता के विरोध में ऐसा भुगतान प्राप्त कर सकता है:
बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति जिसने विरोध के अलावा अन्यथा राशि प्राप्त की है, धारा 18 के तहत कोई भी आवेदन करने का हकदार नहीं होगा:

बशर्ते कि इसमें शामिल कोई भी बात किसी भी व्यक्ति के दायित्व को प्रभावित नहीं करेगी, जो इस अधिनियम के तहत दिए गए किसी भी मुआवजे का पूरा या कुछ हिस्सा प्राप्त कर सकता है, ताकि वह कानूनी तौर पर इसके हकदार व्यक्ति को भुगतान कर सके।

6. विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अश्विनी कुमार ने स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम विश्वदर्शन डिस्ट्रीब्यूटर (पी) लिमिटेड, (1995)1 एससीसी 259 का हवाला देते हुए कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में, सभी उच्च न्यायालय सहित नागरिक या न्यायिक प्राधिकरणों को संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की सहायता के लिए कार्य करने का आदेश दिया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि शिव राज और श्री बालाजी के मामलों (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश उच्च न्यायालय के लिए एक आदेश है, इसलिए उच्च न्यायालय के लिए इसका अक्षरशः पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। **पद्म सुंदर राव बनाम तमिलनाडु राज्य** [2] **में,** यह आयोजित किया गया था अकेले न्यायालयों द्वारा दिए गए रहने की अवधि उत्तरदायी है पुराने अधिनियम के तहत अवॉर्ड की घोषणा करने की अवधि निर्धारित करने के लिए बाहर रखा गया। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि पहले के दो में निर्णय **एन. नरसिम्ह्याह वी. कर्नाटक राज्य**[3]**,** तथा **कर्नाटक राज्य v. डी.सी. नंजुदैया**[4]**,** सही कानून नहीं बनाया है और में व्यक्त किया गया दृश्य **जैसा. नायडू बनाम तमिलनाडु राज्य** एसएलपी (सी) नंबर. 1988 का 11353-55 और **ऑक्सफोर्ड इंग्लिश स्कूल बनाम तमिलनाडु राज्य**[5]**,** था पुष्टि की. यह भी आयोजित किया गया था कि मद्रास की पूर्ण बेंच जजमेंट उच्च न्यायालय, के रूप में रिपोर्ट किया गया **क. चिनाथांबी गौंडर बनाम तमिलनाडु राज्य**[6]**,** 1984 तक पुराने अधिनियम के संशोधन से बहुत पहले प्रस्तुत किया गया था संशोधन

---

[2] (2002) 3 एससीसी 533

[3] (1996) 3 एससीसी 88

[4] (1996) 10 एससीसी 619

[5] (1995)5 एससीसी 206

[6] AIR 1980 मद्रास 251

अधिनियम और वह अधिकतम एक्टस क्यूरिया नीमिनेम ग्रेवाबिट, था उक्त मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं.

7. यह आयोजित किया गया था कि खर्च किए गए समय को बाहर करने के पहले के फैसले रहने के बाद आदेश की प्रति प्राप्त करने में या तो खाली कर दिया गया था पुराने अधिनियम की धारा 6 में धारा 11 ए या स्पष्टीकरण की शर्तें कानून में सही नहीं हैं. न्यायालयों को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर भरोसा नहीं करना चाहिए कि जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है उसकी तथ्यात्मक स्थिति किस प्रकार फिट बैठती है। किसी भाषण या निर्णय के शब्दों को ऐसे मानने में हमेशा जोखिम होता है जैसे कि वे किसी विधायी अधिनियम में शब्द हों, और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कथन किसी विशेष मामले के तथ्यों की सेटिंग में किए जाते हैं, लॉर्ड मॉरिस ने **हेरिंगटन बनाम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड, (1972) 2 डब्लूएलआर 537** में कहा । परिस्थितिजन्य लचीलापन, एक अतिरिक्त या अलग तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच जमीन-आसमान का अंतर पैदा कर सकता है।

> 15. निर्माण के दो सिद्धांत एक कैसस ओमिसस से संबंधित हैं और दूसरा क़ानून को समग्र रूप से पढ़ने के संबंध में अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पहले सिद्धांत के तहत, न्यायालय एक कैसस ओमिसस को केवल स्पष्ट आवश्यकता और जब इसके लिए कारण कानून के चारों कोनों में पाया जाता है, तो उपलब्ध नहीं कर सकता है, लेकिन एक समय में एक कैसस ओमिसस को आसानी से नहीं स्वीकार किया जा सकता है और उस उद्देश्य के लिए एक सांविदानिक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक स्टैचू या धारा के सभी हिस्सों को मिलाकर और प्रत्येक धारा को संदर्भ और इसके अन्य शीर्षकों के साथ व्याख्या की जानी चाहिए, ताकि एक विशिष्ट प्रावधान

पर रखी जाने वाली व्याख्या संपूर्ण अधिनियम का एक संरचित प्रदर्शन बनाए। यह और भी ज्यादा होगा अगर किसी विशेष धारा का शाब्दिक निर्माण स्पष्ट रूप से बेतुक या विलक्षण परिणामों पर पहुंचता है जो विधायक द्वारा इच्छित नहीं थे। "एक अयोग्य परिणाम पैदा करने का इरादा," डैंकवर्ट्स, एल. जे., ने **आर्टेमियौ बनाम प्रोकोपियोउ** (**1966 1 क्यूबी 878**) में कहा, "कोई अन्य व्याख्या उपलब्ध है तो किसी धारा को ऐसे परिणाम को आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू करना "कानून के स्पष्ट इरादे को हराने और पूरी तरह अयोग्य परिणाम पैदा करने" का परिणाम होगा, हमें "शब्दों के साथ कुछ हिंसा करनी" चाहिए और इस प्रकार उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना और एक तार्किक निर्माण प्रदान करना होगा।। [[जैसा कि लॉर्ड रीड ने **ल्यूक बनाम आई.आर.सी. (1966 एसी 557)** में कहा, जहां पृ. 577 पर उन्होंने यह भी देखा: "यह एक नया समस्या नहीं है, हालांकि हमारा ड्राफ्टिंग का मानक ऐसा है कि यह बहुत बार नहीं सामने आता है।"]

8. यह भी स्थिर है कि एक भूमि मालिक के मामले में दिए गए बेदखली के आदेश या एक भूमि मालिक के मामले में दिए गए स्थिति को आदेश, धारा 6 के अधिसूचना के प्रकाशन के साथ आगे नहीं बढ़ने या अवार्ड की घोषणा या कब्ज़ा लेने के लिए राज्य सरकार को उचित ठहराता है। **अभय राम बनाम भारत संघ**[7] का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें न्यायालय ने कहा था:-

[7] (1997) 5 एससीसी 421

9. " इसलिए, **बी.आर. गुप्ता बनाम भारत संघ**, **37(1989) दिल्ली लॉ टाइम्स 150** में दिए गए कारण, रिट याचिकाकर्ताओं की तुलना में धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन को रद्द करने के संदर्भ में स्पष्ट हैं। विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या धारा 6 के तहत उत्तरदाताओं को घोषणा के प्रकाशन से प्रतिबंधित करने वाले कुछ व्यक्तियों द्वारा प्राप्त रोक अपीलकर्ताओं से संबंधित मामलों पर भी समान रूप से लागू होगी। हम इस आधार पर आगे बढ़ते हैं कि अपीलकर्ताओं ने घोषणा के प्रकाशन पर कोई रोक नहीं लगाई थी, लेकिन चूंकि उच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में, वास्तव में, उन्हें घोषणा के प्रकाशन से प्रतिबंधित कर दिया है, आवश्यक रूप से, जब कोर्ट ने याचिकाकर्ताओं के समर्थन में आक्षेपित आदेशों में घोषणा को प्रतिबंधित नहीं किया है, अधिकारियों को मामलों के निपटारे तक अपने हाथ पीछे खींचने पड़े। वास्तव में, इस न्यायालय ने विभिन्न मामलों में स्थगन या कार्यवाही के आदेशों को विस्तारित अर्थ दिया है, जैसे की **यूसुफभाई नूरमोहम्मद नेंदोलिया बनाम गुजरात राज्य (1991) 4 एससीसी 531**, **हंसराज एच. जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य**, **1993 (4) जे.टी 360, संगप्पा गुरुलिंगप्पा सज्जन बनाम कर्नाटक राज्य (1994) 4 एससीसी 145, गांधी गृह निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य 1993 (8) जे.टी 194, जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार 1991 (8) जे.टी 12 और रोशनारा बेगम बनाम भारत संघ, 1986 (1) सर्वोच्च निर्णय 6.** इस न्यायालय द्वारा "कार्रवाई या कार्यवाही पर रोक" शब्दों की व्यापक रूप से व्याख्या की गई है और इसका मतलब है कि इस न्यायालय द्वारा पारित किसी भी प्रकार का आदेश आगे बढ़ने के लिए अधिकारियों की ओर से एक निरोधात्मक कार्रवाई होगी।जब धारा 5ए के तहत जांच करने की कार्रवाई को विवाद में डाल दिया गया और धारा 6 के तहत घोषणा पर सवाल उठाया गया, तो अनिवार्य रूप से जब तक अदालत यह नहीं मानती कि धारा 5ए के तहत जांच ठीक से की

गई थी और धारा 6 के तहत प्रकाशित घोषणा वैध थी, तब तक यह नहीं होगा। मामले में आगे बढ़ने के लिए अधिकारी स्वतंत्र हैं । परिणामस्वरूप, कुछ के संबंध में दिया गया स्टे उन अन्य लोगों पर भी लागू होगा जिन्होंने उस संबंध में स्टे प्राप्त नहीं किया है। हम धारा 5ए की जांच और आपत्तियों पर विचार के संबंध में पहले के निर्देश की शुद्धता से चिंतित नहीं हैं क्योंकि इसे प्रतिवादी संघ द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी।हम इसकी सत्यता पर कोई राय व्यक्त नहीं करते, हालाँकि इस पर संदेह किया जा सकता है।"

10. बाद में, **ओम प्रकाश बनाम भारत संघ**[8] के रूप में रिपोर्ट किए गए एक अन्य फैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने अभय राम के मामले (उपर्युक्त) में पहले के फैसले को मंजूरी दे दी, जब उसने निम्नलिखित को माना: -

71. यह भी उल्लेखनीय है कि अधिनियम की धारा 4 के तहत जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना समग्र प्रकृति की थी ।एक मामले में प्रदान की गई स्थायी रोकथाम का आद अंतरिम आदेश, जिसमें **मुन्नी लाल बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल**, आईएलआर (1984)1 डेल 469 शामिल है और जिसे बाद में पुनः पुष्टि की गई है, उसका उत्तराधिकारी यहां पुनः दिया गया है। हमें यह भी समझाया गया है कि कई अन्य याचिकाओं में भी समर्थन के आद अंतरिम आदेश प्रदान किए गए थे। ।इस प्रकार, इस तरह की स्थायी रोकथाम की आद अंतरिम आदेश के दांतों में, जैसा कि यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है, हम यह राय रखते हैं कि स्थायी रोकथाम के दौरान उत्तरदाताओं को कानून के अंश 6 के तहत घोषणा/सूचना जारी करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। ।जैसे ही रिट याचिका में पारित मुख्य आदेश के आधार

[8] (2010) 4 एससीसी 17

पर अंतरिम रोक हटाई गई, उत्तरदाताओं ने रोक की अवधि का लाभ उठाते हुए, जिसके दौरान उन्हें अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा जारी करने से रोक दिया गया था, आगे बढ़े और अधिनियम की धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी की।

72. इस प्रकार, अन्य शब्दों में, भूमि मालिकों के किसी मामले में प्रदान की गई स्थायी रोकथाम ने उत्तरदाताओं को पूरी रूप से रोक लगा दी है कि उन्हें कानून के धारा 6 के तहत सूचना जारी करने के लिए आगे बढ़ने का कोई संभावना नहीं थी। अगर उन्होंने स्थायी रोकथाम के सक्रिय होने के दौरान उक्त सूचना जारी की होती, तो स्वाभाविक रूप से उन्हें अदालत के समर्थन का उल्लंघन करने के लिए कड़ी कारवाई की जा सकती थी। स्थायी रोकथाम के अंतरिम आदेशों में प्रयुक्त भाषा भी ऐसी है कि इसने पूरी रूप से उत्तरदाताओं को रोक लगा दी थी कि वे अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा/सूचना जारी करके मामले में आगे नहीं बढ़ सकते थे।

11. यह भी विवाद का विषय नहीं है कि पुराने अधिनियम के प्रावधान राज्य सरकार को मुआवजे के भुगतान पर अपने नागरिकों की भूमि का अधिग्रहण करने में सक्षम बनाते हैं। भूमि अधिग्रहण का ऐसा अधिकार संप्रभु का अधिकार है और प्रतिष्ठित डोमेन का प्रयोग करने के अपने अधिकार का निर्वहन करता है। कानून (पुराना अधिनियम) प्रकृति में स्वामित्ववादी है, इसलिए, इसके कार्यान्वयन में सख्त व्याख्या की आवश्यकता है। पुराना अधिनियम केवल मुआवजे के भुगतान पर भूमि के अधिग्रहण से संबंधित है, यानी भूमि मालिकों को उनकी भूमि से वंचित करना, लेकिन भूमि मालिकों के पुनर्वास के लिए कोई प्रावधान प्रदान किए बिना। दूसरी ओर, अधिनियम शुरू में मुआवजे के भुगतान पर अधिग्रहण की

प्रक्रिया को और अधिक कठोर बनाकर भूमि अधिग्रहण का प्रावधान करता है, जो पुराने अधिनियम के तहत विचार की तुलना में कहीं अधिक उदार है और पुनर्वास प्रक्रिया का भी प्रावधान करता है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम के प्रावधान अधिग्रहण के संबंध में पुराने अधिनियम की तुलना में कड़े हैं, लेकिन मुआवजा और पुनर्वास के अनुदान के संबंध में उदार हैं।

अधिनियम के तहत, राज्य द्वारा अधिग्रहण प्रक्रिया शुरू करने से पहले, सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन की तैयारी आवश्यक है। इसे प्रकाशित किया जाना आवश्यक है और रिपोर्ट पर उपयुक्त सरकार द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है । ऐसी रिपोर्टों पर विचार करने के बाद ही; किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए अधिनियम की धारा 11 के अनुसार प्रारंभिक अधिसूचना प्रकाशित की जा सकती है । अधिनियम की धारा 11 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन योजना का मसौदा तैयार करने के लिए प्रभावित व्यक्तियों का सर्वेक्षण भी किया जाना आवश्यक है। इसके बाद, अधिनियम की धारा 19 के तहत अधिसूचना प्रकाशित की जाएगी कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए एक विशेष भूमि की आवश्यकता है। । अधिनियम की धारा 19 के तहत की सूचना को प्रारंभिक सूचना की तारीख से 12 महीने के भीतर प्रकाशित किया जाना चाहिए। अगर ऐसा समय के भीतर घोषणा नहीं की जाती है, तो ऐसी सूचना को रद्द माना जाएगा। अधिनियम की धारा 19 के तहत अधिसूचना प्रारंभिक अधिसूचना की तारीख से 12 महीने के भीतर प्रकाशित की जानी आवश्यक है। यदि इतने समय के भीतर घोषणा नहीं की जाती है तो ऐसी अधिसूचना रद्द मानी जायेगी। अधिनियम की धारा 25 में प्रावधान है कि अधिनियम की धारा 19 के तहत घोषणा के आदेश की तारीख से 12 महीने की अवधि के भीतर कलेक्टर

द्वारा पुरस्कार दिया जाना आवश्यक है। हालाँकि, उपयुक्त सरकार को 12 महीने की अवधि बढ़ाने की शक्ति दी गई है यदि उसकी राय में परिस्थितियाँ इसे उचित ठहराती हैं। अधिनियम की धारा 69 भूमि मालिकों के पुनर्वास और पुनर्वास सहित अर्जित भूमि के लिए पुरस्कार से संबंधित है। उप-धारा (2) में संलग्न स्पष्टीकरण यह प्रदान करता है कि उप-धारा (2) में निर्दिष्ट अवधि की गणना करते समय, कोई भी अवधि या अवधि जिसके दौरान भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही किसी रोक या निषेधाज्ञा के कारण रोक दी गई थी, किसी भी न्यायालय के आदेश से बाहर रखा जाएगा ।

अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैं:-

"धारा 19. घोषणा का प्रकाशन और पुनर्वास और पुनर्स्थापन का सारांश।-

(1) जब उपयुक्त सरकार तय करती है, उपधारा 15 के उपधारा (2) के तहत बनाए गए रिपोर्ट, यदि कोई हो, को विचार करने के बाद, कि किसी विशेष भूमि की आवश्यकता सार्वजनिक उद्देश्य के लिए है, तो इस प्रकार की घोषणा की जाएगी, जिसमें "पुनर्वास क्षेत्र" के रूप में पुनर्वास और पुनर्निवास के लिए प्रभावित परिवारों के लिए क्षेत्र की पहचान की जाएगी, इस प्रकार की घोषणा को उस सरकार के सचिव या उस सरकार द्वारा इसके आदेशों को प्रमाणित करने के लिए योग्य किए गए किसी अन्य अधिकारी के हस्ताक्षर और मुहर के साथ किया जाएगा और एक ही प्रारंभिक अधिसूचना द्वारा कवर किए जाने वाले किसी भूमि के विभिन्न खंडों के संबंध में समय समय पर विभिन्न घोषणाएं की जा सकती हैं, चाहे एक रिपोर्ट हो या एक ही समय में विभिन्न रिपोर्टें बनाई गई हों (जहां आवश्यक हो)।

(2) कलेक्टर उप-धारा (1) में निर्दिष्ट घोषणा के साथ पुनर्वास और पुनर्स्थापन योजना का सारांश प्रकाशित करेगा।

बशर्ते कि xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

(7) जहां प्रारंभिक अधिसूचना की तारीख से बारह महीने के भीतर उप-धारा (1) के तहत कोई घोषणा नहीं की जाती है, तो ऐसी अधिसूचना रद्द कर दी गई मानी जाएगी:

बशर्ते कि इस उप-धारा में निर्दिष्ट अवधि की गणना करते समय, किसी भी अवधि या अवधि, जिसके दौरान किसी न्यायालय के आदेश द्वारा किसी रोक या निषेधाज्ञा के कारण भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही रोक दी गई थी, को बाहर रखा जाएगा:
बशर्ते कि उपयुक्त सरकार के पास बारह महीने की अवधि बढ़ाने की शक्ति होगी, यदि उसकी राय में इसे उचित ठहराने वाली परिस्थितियां मौजूद हों:
बशर्ते यह भी कि अवधि बढ़ाने का ऐसा कोई भी निर्णय लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा और उसे अधिसूचित किया जाएगा और संबंधित प्राधिकरण की वेबसाइट पर अपलोड किया जाएगा।

xx xx xx

24. अधिनियम संख्या 1 के 1894 के तहत भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया कुछ मामलों में निरस्त मानी जाएगी।–

(1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के किसी भी मामले में,--

(a) जहां उक्त भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11 के तहत कोई अवार्ड नहीं दिया गया है, तो मुआवजे के निर्धारण से संबंधित इस अधिनियम के सभी प्रावधान लागू होंगे; या

(b) जहां उक्त धारा 11 के तहत कोई अवार्ड बनाया गया है, तब ऐसी प्रक्रियाएं उ क्त भूमिअधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों के तहत जारी रहेंगी, मानो उक्त अ धिनियम को निरस्त नहीं कियागया हो।

(2) उप-धारा (1) में कुछ भी हो, यदि भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया 1894 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत प्रारंभ की गई हो, जहां इस अधिनियम की शुरुआत से पाँच वर्ष या इससे अधिक समय पहले धारा 11 के तहत एक अवार्ड प्रदान किया गया हो, लेकिन भूमि का वास्तविक कब्जा नहीं लिया गया हो या मुआवजा नहीं दिया गया हो, तो कहीं न कही उप-धारा (1) में दिए गए किसी भी विषय के बावजूद, उन प्रक्रियाओं को शापित माना जाएगा और उचित सरकार, यदि वह चाहे, इस अधिनियम की प्रावधानिकता के अनुसार ऐसे भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को पुनः प्रारंभ करेगी:

यह प्रदान किया गया है कि जब किसी पुरस्कार की गई हो और भूमि होल्डिंग्स के अधिकांश के संबंध में मुआवजा बेनेफिशियरी के खाते में जमा नहीं किया गया हो, तो, उस सभी बेनेफिशियरी को मुआवजा मिलेगा जो उक्त भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिग्रहण के लिए अधिसूचित हैं, इस अधिनियम की प्रावधानिकता के अनुसार।

X X X X X X

27. **अवार्ड बनाने की अवधि।**–

कलेक्टर को धारा 19 के तहत घोषणा की प्रकाशन की तारीख से बारह महीने के भीतर एक पुरस्कार बनाना चाहिए और यदि उस अवधि के भीतर कोई पुरस्कार नहीं बनाया जाता है, तो भूमि का पूरा अधिग्रहण के लिए प्रक्रिया रद्द हो जाएगी:

प्रदान किया गया है कि यदि उचित सरकार को लगता है कि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो इसे बढ़ाने का कारण बनाती हैं, तो वह 12 महीने की अवधि को बढ़ाने का अधिकार है।
इसके आगे की बशर्ते कि अवधि बढ़ाने के लिए कोई भी निर्णय लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा औरवही संबंधित प्राधिकरण की वेबसाइट पर अधिसूचित और अपलोड किया जाएगा।

69. **प्राधिकरण द्वारा अवार्ड का निर्धारण।–**

(1) जब भूमि प्राप्त होने के लिए मुआवजा निर्धारित करना हो, जिसमें पुनर्वास और पुनर्निवास का हक शामिल है, तो प्राधिकृति को यह देखना चाहिए कि क्या कलेक्टर ने इस अधिनियम की धारा 26 से धारा 30 और इस अधिनियम के अध्याय V के तहत निर्धारित पैरामीटरों का पालन किया है।

(1) ऊपर प्रदान की गई भूमि की बाजार मूल्य के अतिरिक्त, प्राधिकृति को प्रति वर्ष बारह प्रतिशत की दर पर हर मामले में प्राधिकृति करेगा, जो ऐसी भूमि के संबंध में धारा 11 के तहत प्रारंभ होने वाली प्रारंभिक सूचना की प्रकाशन की तारीख से लेकर कलेक्टर के पुरस्कार की तारीख या भूमि के कब्जे की तारीख, जो भी पहले हो, तक की अवधि के लिए।

व्याख्या-

इस उपधारा में उल्लिखित अवधि की गणना करते समय, किसी भी अवधि या अवधि योंको जिस दौरान भूमि के अधिग्रहण की प्रक्रिया किसी न्यायालय के आदेश से किसी स्थगन यानिषेधाज्ञा के कारण रोकी गई थी, बाहर किया जाएगा।

13. अधिनियम की धारा 24 की प्रावधानिकता को पहली बार **पुणे नगर निगम और अन्य बनाम हरकचंद मिसिरिमल सोलंकी और अन्य, (2014) 3 एससीसी 183** में विचार के लिए लाई गई थी, जिसका निर्णय 24.1.2014 को हुआ था। उस मामले में, मुआवजा की राशि भूमि मालिकों को नहीं दी गई थी और न ही उसे विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा न्यायालय में जमा किया गया था। बॉम्बे हाई कोर्ट में अधिग्रहण प्रक्रिया को चुनौती देने के लिए नौ याचिकाएँ दाखिल की गई थीं। अधिग्रहण प्रक्रिया को चुनौती देने के लिए बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष नौ याचिकाएँ दायर की गईं। उनमें से दो पुरस्कार देने से पहले के थे और सात पुरस्कार के बाद विभिन्न आधारों पर दायर किए गए थे। उच्च न्यायालय ने 24.10.2008 को जारी किए गए आदेश में अधिग्रहण प्रक्रिया को रद्द किया और प्राप्ति की विभिन्न दिशाएँ दीं, जिसमें कब्जे की पुनर्स्थापना भी शामिल थी। उस अधिग्रहण प्रक्रिया के रद्द करने के आदेश के खिलाफ एक अपील में, मान्यवर सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 24(2) का आवाहन किया ताकि एक आदेश दिया जा सके कि मुआवजा पांच वर्षों तक नहीं दिया गया था और इसलिए अधिग्रहण प्रक्रिया रद्द हो गई है।

यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त अपील SLP(C) 30283 of 2008 में अनुमति प्रदान होने के परिणामस्वरूप थी। सुप्रीम कोर्ट ने 17.12.2008 को विवादास्पद आदेश की क्रिया को रोक दिया। इसलिए, भूमि के मालिक उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार पुनर्स्थापना का दावा नहीं कर सकते थे।

14. **भारत कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2014) 6 एस सी सी 586 में**, एक अपील दाखिल की गई गई थी जिसका आदेश इसी कोर्ट ने CWP No. 18375 of 2004 में 11.10.2007 को तय किया था। इस न्यायालय द्वारा दाखिल की गई रिट पिटीशन में भूमि के मालिकों को कोई अंतरिम सुरक्षा नहीं मिली थी। इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के खिलाफ एक एसएलपी में, मान्यवर सुप्रीम कोर्ट ने 28.7.2008 को आदेश किया कि प्राप्ति ज़मीन में पेटीशनर की कब्ज़ा हटाया न जाए, लेकिन फिर भी शेष ज़मीन का कब्ज़ा पांच वर्ष से अधिक समय तक नहीं लिया गया।

15. **बीमला देवी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2014)6 एस सी सी 583** में, जिसका निर्णय 14.3.2014 को हुआ था, भूमि अधिग्रहण कलेक्टर ने 18.11.1995 को पुरस्कार की घोषणा की थी, लेकिन मुआवजा 31.1.2014 तक नहीं दिया गया था या नहीं जमा किया गया था। भौतिक कब्जा भी भूमि के मालिकों के पास था। इसलिए, न्यायालय ने यह तय किया कि अधिग्रहण को समाप्त माना जाता है। यह देखा गया है कि इस न्यायालय के सामने CWP No. 512 of 1994 का मौलिक रिकॉर्ड, जिस पर सुप्रीम कोर्ट के सामने यह आपत्तिजनक थी, दिखाता है कि 12.1.1994 को विरोधाभासी करने के लिए अंतरिम कब्ज़ा का आदेश था। इस न्यायालय के आदेश के खिलाफ एसएलपी में, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के खिलाफ रखने का आदेश था।

16. एक और मामले में जिसे **भारत संघ और अन्य बनाम शिव राज और अन्य, (2014) 6 एससीसी 564** के रूप में रिपोर्ट किया गया है जिसका निर्णय

7.5.2014 को हुआ था, मान्यवर सुप्रीम कोर्ट ने 11 अपीलों का निर्णय दिया, जिसमें संघ की 10 अपीलें और विनोद कपूर की सिविल अपील संख्या1579 of 2010 शामिल भारत सरकार द्वारा दाखिल की गई अपीलें दिल्ली हाई कोर्ट के एक आदेश के खिलाफ थीं, जिसमें भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया को रद्द कर दिया गया था, क्योंकि पुराने अधिनियम की धारा 5-ए के तहत भूमि के मालिकों द्वारा की गई आपत्तियाँ साक्षात्कारिक प्राधिकृतियों के सख्त अनुसरण के कारण सृजन नहीं की गई थीं। यह भी पाया गया कि वही सूचना भी उसी समाने में शामिल थी जो दिल्ली हाई कोर्ट की पूर्ण बेंच के पहले निर्णय में सूचनित की गई थी जिसे **बालक राम गुप्ता बनाम भारत संघ, (2005) 117 डीएलटी 753** के रूप में रिपोर्ट किया गया था।। यही समस्या मान्यवर सुप्रीम कोर्ट ने अभय राम का मामला (ऊपर) और **दिल्ली प्रशासन बनाम गुरदीप सिंह उबन, (2000)7 एससीसी** 296 में संबोधित की थी। यह फिर से देखा जा सकता है कि दिल्ली हाई कोर्ट के आदेश के खिलाफ भारत सरकार द्वारा की गई कोई भी अपील में किसी भी अंतरिम आदेश नहीं था।

17. शिव राज के मामले में (सुप्रसिद्ध), न्यायालय ने भारत सरकार, शहरी विकास मंत्रालय द्वारा 14.03.2014 को जारी की गई सर्कुलर को भी विचार किया, जो भारत के सोलिसिटर जनरल की कानूनी राय पर आधारित थी। एक निर्णय लौटाया गया कि क्योंकि अबतक कब्जा नहीं किया गया है, इसे ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह एक स्वतंत्र भुगतान है। इस परिणामस्वरूप, अपीलें खारिज की गईं।

18. इसे और भी देखा जा सकता है कि सिविल अपील संख्या. 1579 of 2010 जिसे विनोद कपूर ने दाखिल किया, जिसका निर्णय एक ही दिन में एक अलग आदेश के रूप में रिपोर्ट किया गया था जिसे शिव राज सिंह का मामला (सुप्रसिद्ध)

कहा जाता है, उसने एक भूमि मालिक द्वारा अधिग्रहण को चुनौती देने के लिए एक राइट पीटीशन से उत्पन्न हुआ था, जिसे 17.12.2004 को खारिज किया गया और समीक्षा याचिका को 27.7.2007 को।को। यह भी देखा गया कि जब रिट याचिका लंबित थी तब बेदखली पर रोक थी लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया था। यह देखा गया कि उच्च न्यायालय ने वर्ष 2007 में रिट याचिका पर निर्णय लिया था, लेकिन सात साल की अवधि तक कार्यवाही पर कोई रोक नहीं थी, फिर भी पुरस्कार के अनुसरण में प्रतिवादियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसलिए, कार्यवाहियों कोसमाप्त माना गया। फैसले के प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार हैं:

> "48. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उसी अधिसूचना और घोषणा के अंतर्गत आने वाली अन्य भूमि विभिन्न अन्य रिट याचिकाओं का विषय थी और विशेष रूप से, 2009 की सिविल अपील संख्या 4374 में प्रतिवादी गीता देवी की भूमि, मामला लंबित रहा। , इस प्रकार, समीक्षा याचिका आदि दायर की गई थी, जिसे 27.7.2007 को खारिज कर दिया गया था। (**कपूर बनाम भारतसंघ, (2007)145 DLT 328**)।"
>
> 49. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों से यह स्पष्ट है कि उसने रिट याचिका के साथ-साथ समीक्षा याचिका के लंबित रहने के दौरान बेदखली पर रोक लगा दी थी, हालांकि इस अदालत द्वारा कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है। प्रतिस्पर्धी ने विवादित भूमि का कब्ज़ा नहीं लिया था हालांकि उपाधि 1987-1988 में की गई थी, और उच्च न्यायालय ने वर्ष 2007 में अपीलकर्ता के खिलाफ निर्णय लिया था। । इस प्रकार, कार्यवाही

पर रोक लगाए बिना 7 वर्ष की अवधि बीत गई है और अभी तक प्रतिवादियों द्वारा पुरस्कार के अनुसरण में कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

तर्कों की सुनवाई के क्रम में, एक और आदेश को सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिया गया था जो सिविल अपील संख्या 8700 of 2013 - **श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य**, जिसका निर्णय 10.9.2014 को लिया गया था, उसे बेंच को सूचित किया गया। ।उक्त मामले में, पुणे नगर निगम के मामले (सुप्रा) में फैसले पर भरोसा करते हुए, यह माना गया कि चूंकि भूमि का भौतिक कब्ज़ा नहीं लिया गया है, इसलिए भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही को व्यपगत माना जाएगा या घोषित किया जाएगा। ।यह भी देखा गया कि अधिनियम की धारा 24 को पढ़ने से ऐसी कोई भी अवधि शामिल नहीं होती जिसके दौरान किसी न्यायालय द्वारा दिए गए स्थगन के कारण भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही रुकी रही हो। इस प्रकार निर्धारित किया गया था:-

> "9. 2013 अधिनियम की धारा 24 को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि 2013 अधिनियम की धारा 24(2) किसी भी अवधि को बाहर नहीं करती है, जिसके दौरान भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही किसी भी अदालत द्वारा दिए गए स्थगन या निषेधाज्ञा के कारण रुकी हुई हो सकती है। ।इसी अधिनियम में, धारा 19(1) के तहत घोषणा के प्रकाशन की सीमा के संदर्भ में धारा 19(7) का प्रावधान और देरी के संदर्भ में भूमि के बाजार मूल्य की गणना के लिए धारा 69(2) का स्पष्टीकरण धारा 11 के तहत प्रारंभिक अधिसूचना और पुरस्कार की तारीख के बीच, विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि वह अवधि या अवधि जिसके दौरान किसी अदालत के आदेश द्वारा

किसी रोक या निषेधाज्ञा के कारण अधिग्रहण की कार्यवाही रोक दी गई थी, उसे प्रासंगिक अवधि की गणना में शामिल नहीं किया जाएगा। इस दृष्टिकोण से, इस सुरक्षित रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है कि संसद ने स्वयं विचार करके निर्णय किया है कि धारा 24(2) में इंडिकेट किए गए पाँच वर्षों की अवधि को बढ़ाए जाने का विस्तार नहीं करना चाहिए, भले ही प्रक्रिया को कोई न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए किसी आदेश या रोक के कारण या किसी अन्य कारण से देरी हो रही थी। **पद्म सुंदर राव (मृत) और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (2002) 3 एससीसी 533** के मामले में इस न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप से चर्चा किए गए विषय पर कानून के मद्देनजर इस तरह के कैसस ऑमिसस को अदालत द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है।

20. तर्कों के क्रम में, हमने भूमि मालिकों के योजना किया है कि कोई ऐसा कानूनी प्रावधान जिसे कोई अधिनियम में नहीं या किसी न्यायिक निर्णय में नहीं तथा जिसे यह निर्धारित होता है कि न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए स्थगिति की अवधि या किसी अन्य अंतरिम आदेश को लेकर निर्णय की जाए कि इस अवधि को किसी अधिनियम के तहत निर्धारित की जाए। । ज़मीन मालिकों के वकील ने पुणे नगर निगम; भरत कुमार का, बिमला देवी का; शिव राज और श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन के मामले (सुप्रा) के फैसले का हवाला दिया । हालाँकि, वकील किसी भी क़ानून या किसी मिसाल में किसी भी वैधानिक प्रावधान को इंगित नहीं कर सका जो यह निर्देश देता है कि न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम सुरक्षा की अवधि को किसी भी क़ानून के तहत निर्धारित अवधि निर्धारित करने के लिए ध्यान में रखा जाएगा।

21. विपक्ष में, पंजाब के अध्यक्ष वकील, श्री आशोक अग्रवाल, न केवल स्पष्ट बल्कि यह भी स्पष्ट रूप से कह रहे थे कि कोई पूर्वाधिकार नहीं है जिससे निर्धारित किया जा सकता है कि न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए स्थगिति की अवधि को किसी अधिनियम के तहत निर्धारित किया जाए, केवल उच्चतम न्यायालय के निर्णय **विनीत कुमार बनाम मंगल सैन वढेरा, 1984(3) एससीसी 352** को छोड़कर। उक्त मामले में न्यायालय ने किरायेदार को बेदखल करने के लिए किराया संरक्षण कानूनों से छूट अवधि के दौरान कब्जे के लिए डिक्री देने के सवाल पर विचार करते हुए कहा कि बेदखली का आदेश छूट अवधि के भीतर पारित और निष्पादित किया जाना आवश्यक है। यह तर्क दिया गया है कि इस तरह के फैसले को एक अच्छा कानून नहीं पाया गया और इसे **आत्मा राम मित्तल बनाम ईश्वर सिंह पुनिया, (1988) 4 एससीसी 284** में खारिज कर दिया गया। । **श्री किशन बनाम मनोज कुमार, (1998) 2 एससीसी 710** के रूप में रिपोर्ट किए गए बाद के फैसले में, अन्य तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि विनीत कुमार के मामले (सुप्रा) में निर्णय अच्छा कानून नहीं है। । न्यायालय ने कहा:–

> "20. इस प्रकार यह देखा गया है कि यह न्यायालय लगातार यह विचार कर रहा है कि छूट की अवधि के दौरान दायर किए गए मुकदमे को जारी रखा जा सकता है और उसमें पारित डिक्री को निष्पादित किया जा सकता है, भले ही मुकदमे के लंबित रहने के दौरान छूट की अवधि समाप्त हो जाए। । एकमात्र असंगत टिप्पणी **विनीत कुमार बनाम मंगल सैन वढेरा, 1984(3) एससीसी 352** में दर्ज की गई थी। । हमने देखा है कि उसके बाद के कई फैसलों में यह माना गया कि विनीत कुमार अच्छे कानून नहीं हैं।

हमने पहले ही अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या कर ली है और बताया है कि अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो सिविल अदालत को मुकदमा जारी रखने और डिक्री पारित करने से रोकता है जिसे निष्पादित किया जा सकता है।"

इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि हाल के आदेशों के अलावा न तो कोई क़ानून और न ही मिसालें इस निष्कर्ष का समर्थन करती हैं कि क़ानून के तहत निर्धारित अवधि निर्धारित करने के लिए अंतरिम आदेश की अवधि को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

22.इस पृष्ठभूमि के साथ, हम अब पक्षकारों के लिए विद्वान वकीलों के संबंधित तर्कों की जांच करते हैं।

23. भूस्वामियों के विद्वान वकील ने कई प्रारंभिक आपत्तियां उठाई हैं कि इस न्यायालय की एक खंडपीठ इस प्रश्न को बड़ी पीठ के निर्णय के लिए संदर्भित नहीं कर सकती है, कि क्या न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश की अवधि को बाहर रखा जा सकता है या नहीं। क्योंकि यह इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से परे है क्योंकि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के अनुसार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून का पालन करने के लिए बाध्य है। ।यह तर्क दिया जाता है कि किसी अन्य तर्क की खोज किसी बाध्यकारी सिद्धांत को पूर्ववत या पुनर्विचार के लिए बाध्य नहीं कर सकती है। प्रमुख न्यायाधीश द्वारा उद्धृत निर्णयों के आधार पर तर्क किया जा रहा है कि सुप्रीम कोर्ट का निर्णय इस महकम के लिए बाधक पूर्व निर्णय है। इसमें शामिल हैं: अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य (1980)3 एस सी सी 719; डायरेक्टर ऑफ सेटलमेंट्स,

ए.पी और अन्य बनाम मिस्टर अप्पाराओ और एक और, (2002)4 एस सी सी 638; इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम कैननोर स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स लिमिटेड और अन्य, (2002)5 एस सी सी 54; सेंट्रल बोर्ड ऑफ़ दावूदी बोहरा कम्युनिटी और अन्य बनाम राज्य महाराष्ट्र और अन्य, (2005)2 एस सी सी 673 और फिदा हुसैन और अन्य बनाम मुरादाबाद विकास प्राधिकृति और एक और, (2011)12 एस सी सी 615।

24. दाऊदी बोहरा समुदाय के केंद्रीय बोर्ड के मामले (सुप्रा) में एक संविधान पीठ ने बड़ी पीठ के निर्णयों के बाध्यकारी उदाहरणों के दायरे के संबंध में कानूनी स्थिति का सारांश दिया। अदालत ने कहा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या वाली पीठ द्वारा दिए गए निर्णय में निर्धारित कानून कम या बराबर शक्ति वाली किसी भी बाद की पीठ पर बाध्यकारी है और कम कोरम वाली पीठ किसी बड़े कोरम की एक बेंच द्वारा लिया गया कानून के दृष्टिकोण से असहमत नहीं हो सकती है। । यह केवल समान शक्ति वाली पीठ के लिए ही खुला होगा कि वह पिछली समान शक्ति वाली पीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह करते हुए अपनी राय व्यक्त कर सके। उक्त नियम दो अपवादों के अधीन हैं - एक यह मुख्य न्यायाधीश के विवेक को बाध्य नहीं करता है जिसमें रोस्टर तैयार करने की शक्ति निहित है और जो किसी विशेष मामले को किसी भी शक्ति की किसी विशेष पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखने का निर्देश दे सकता है;, और उन्होंने कहा कि यदि एक अधिक संख्यावाले बेंच का तर्क है कि कम संख्यावाले बेंच द्वारा लागू किए गए कानूनी दृष्टिकोण को सुधार या पुनरावलोकन की आवश्यकता है, तो उसके द्वारा दिए गए कारणों के आधार पर वह केस को सुन सकता है और पूर्व निर्णय की सहीता

की जाँच कर सकता है, इसमें विशिष्ट संदर्भ या बेंच के प्रमुख द्वारा बेंच बनाने और उसे सुनने की आवश्यकता के बिना।

25. अंबिका प्रसाद मिश्रा के मामले (सुप्रा) में न्यायालय ने माना कि प्रत्येक नई खोज या तर्कपूर्ण नवीनता एक बाध्यकारी मिसाल को पूर्ववत या पुनर्विचार के लिए बाध्य नहीं कर सकती है। रचनात्मक सरलता से जगमगाती और उच्च दबाव की वकालत के साथ प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ एक बाध्यकारी मिसाल को फिर से खोलने के लिए राजी नहीं कर सकती हैं। यह नीचे दिएगए अनुसार देखा गया था:-

> "5. ....वह निर्णय सामान्य निर्णयों और अनुच्छेद 141 के संवैधानिक आधार पर बंधा हुआ है। प्रत्येक नई खोज या तर्कपूर्ण नवीनता एक बाध्यकारी मिसाल को पूर्ववत या पुनर्विचार के लिए मजबूर नहीं कर सकती है। इस दृष्टिकोण से, अन्य प्रस्तुतियाँ जो रचनात्मक पौंथैहड़ से चमक रही थीं और उच्च दबाव से प्रस्तुत की गई थीं, हमें यह फिर से खोलने के लिए प्रेरित नहीं कर सकतीं जो कि महत्वपूर्ण **मौद्रिक अधिकार मामले (1973)4 एससीसी 225** में एक गम्भीर प्रस्तावना के रूप में राष्ट्र के मार्गदर्शन के लिए निर्धारित किया गया था, ।
>
> 6. यह याद रखना बुद्धिमानी है कि पहले के फैसलों द्वारा खामोश कर दी गई घातक खामियाँ मृत्यु के बाद जीवित नहीं रह सकतीं क्योंकि कोई निर्णय अपना अधिकार नहीं खोता है "केवल इसलिए कि उस पर बुरी तरह से तर्क दिया गया, अपर्याप्त रूप से विचार किया गया और गलत तरीके से तर्क दिया गया" **सैल्मंड: न्यायशास्त्र**, पृष्ठ 215 (11वां

संस्करण)।। और इनमें से किसी भी दुर्भाग्य का आरोप **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, (1973)4 एससीसी 225**... पर नहीं लगाया जा सकता।

26. निपटान के निदेशक के मामले (उपर्युक्त) में, तीन जजों की पीठ ने इस प्रकार धारणा की:-

> "7. जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, संविधान का अनुच्छेद 141 स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर सभी अदालतों पर बाध्यकारी होगा। उपरोक्त अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय को कानून घोषित करने का अधिकार देता है। इसलिए, किसी कानून की व्याख्या करना न्यायालय का एक आवश्यक कार्य है। कानून के अलावा अन्य मामलों जैसे तथ्यों पर न्यायालय के बयानों में कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं हो सकती है क्योंकि दो मामलों के तथ्य समान नहीं हो सकते हैं। लेकिन जो बाध्यकारी है वह निर्णय का अनुपात है न कि तथ्यों का कोई निष्कर्ष। यह एक निर्णय को पढ़ने पर पाया गया सिद्धांत है

संपूर्ण, न्यायालय के समक्ष प्रश्नों के आलोक में जो अनुपात बनाता है न कि कोई विशेष शब्द या वाक्य। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या किसी निर्णय में "घोषित कानून" है, इसे तब कानून नहीं कहा जा सकता जब किसी मुद्दे का निपटारा रियायत पर किया जाता है और जो बाध्यकारी है वह निर्णय का अंतर्निहित सिद्धांत है। न्यायालय के निर्णय को उन प्रश्नों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जो उस मामले में विचार के लिए उठे थे जिसमें निर्णय सुनाया गया था।'ओबिटर डिक्टम' जो रेशियो डिसाइडेंडी से अलग है, न्यायालय द्वारा ऐसे मामले में सुझाए गए कानू

नी प्रश्न परएक टिप्पणी है लेकिन इस तरह से उठाई गई नहीं है कि निर्णय की आवश्यकता हो। इस तरह के एक ओबिटर का कोई बाध्यकारी उदाहरण नहीं हो सकता है क्योंकि सुनाए गए निर्णय के लिए अवलोकन अनावश्यक था, लेकिन भले ही एक ओबिटर का एक मिसाल के रूप में बाध्यकारी प्रभाव नहीं हो सकता है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इसका काफी महत्व है। इसलिए, जो कानून अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी होगा, वह किसी दिए गए मामले में न्यायालय द्वारा उठाए गए और तय किए गए बिंदुओं की सभी टिप्पणियों तक विस्तारित होगा। जहां तक संवैधानिक मामलों का सवाल है, न्यायालय की यह प्रथा है कि वह उन मुद्दों पर कोई घोषणा नहीं करता जो सीधे तौर पर उसके निर्णय के लिए नहीं उठाए जाते। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर इस आधार पर आलोचना नहीं की जा सकती कि कुछ पहलुओं पर विचार नहीं किया गया या संबंधित प्रावधानों को न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया.....

18. अंतिम प्रश्न पर आते हुए, श्री राव ने जोरदार आग्रह किया कि शेनॉय एंड कंपनी बनाम सीटीओ, (1985)2 एससीसी 512 पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि इसमें रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत सहित विभिन्न सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा गया है। लेकिन इस न्यायालय के फैसले की जांच करने पर, विशेष रूप से, संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रावधानों के संबंध में निष्कर्ष, और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसे लागू करने पर, हमें नहीं लगता कि कोई मामला बनाया गया है शेनॉय मामले (सुप्रा) को पुनर्विचार के लिए एक बड़ी बेंच के पास भेजने की मांग। दूसरी ओर, हम शेनॉय मामले में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। शेनॉय में

न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 141 की प्रयोज्यता और उन मामलों पर इसके प्रभाव पर विचार कर रहा था, जिनके खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई थी। देश का एक कानून हर किसी पर शासन करेगा, और निर्णय के सिद्धांत पर विचार न करना उक्त निर्णय पर पुनर्विचार करने का आधार नहीं होगा।

27. विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अश्विनी कुमार ने स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम विश्वदर्शन डिस्ट्रीब्यूटर (पी) लिमिटेड, (1995)1 एससीसी 259 का हवाला देते हुए कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में, सभी उच्च न्यायालय सहित नागरिक या न्यायिक प्राधिकरणों को संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की सहायता के लिए कार्य करने का आदेश दिया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि शिव राज और श्री बालाजी के मामलों (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश उच्च न्यायालय के लिए एक आदेश है, इसलिए उच्च न्यायालय के लिए इसका अक्षरशः पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

28. आखिरी सवाल पर आते हुए, श्री राव ने जोरदार ढंग से आग्रह किया **शेनॉय एंड कंपनी बनाम सी.टी.ओ., (1985)2 एससीसी 512** पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि इसमें पुनर्न्याय के सिद्धांत सहित विभिन्न सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा गया है।लेकिन इस न्यायालय के फैसले की जांच करने पर, विशेष रूप से, संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रावधानों के संबंध में निष्कर्ष, और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसे लागू करने पर, हमें नहीं लगता कि शेनॉय मामले (सुप्रा) को पुनर्विचार हेतु एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने के लिए कोई मामला बनाया गया है। दूसरी ओर, हम शेनॉय मामले में इस न्यायालय की

तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। शेनॉय में न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 141 की प्रयोज्यता और उन मामलों पर इसके प्रभाव पर विचार कर रहा था, जिनके खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई थी। देश का एक कानून हर किसी पर शासन करेगा, और निर्णय के सिद्धांत पर विचार न करना उक्त निर्णय पर पुनर्विचार करने का आधार नहीं होगा।

विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अश्विनी कुमार ने स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम विश्वदर्शन डिस्ट्रीब्यूटर (पी) लिमिटेड, (1995)1 एससीसी 259 का हवाला देते हुए कहा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में, सभी प्राधिकरण, उच्च न्यायालय सहित नागरिक या न्यायिक, सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करने के लिए संविधान द्वारा अनिवार्य हैं। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि शिव राज और श्री बालाजी के मामलों (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट का आदेश उच्च न्यायालय के लिए एक आदेश है, इसलिए उच्च न्यायालय के लिए इसका अक्षरश: पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी प्रस्ताव को उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर दरकिनार नहीं किया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान एक कहावत की ओर आकर्षित नहीं किया गया है। **फ़ुज़लुनबी बनाम के. खादर वली और अन्य, (1980)4 एससीसी 125** पर भरोसा रखा गया है। **आधिकारिक परिसमापक बनाम दयानंद और अन्य, (2008)10 एससीसी** 1 का संदर्भ यह तर्क देने के लिए दिया गया था कि न्यायिक प्रणाली को बनाए रखने के लिए न्यायिक अनुशासन अपरिहार्य है, जिसमें यह तर्क भी शामिल है कि दो-न्यायाधीशों की पीठ सात जजों की बेंच के के फैसले की शुद्धता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। कोर्ट ने कहा कि दो जजों की बेंच का फैसला यू.पी. एसईबी बनाम पूरन चंद्र पांडे,

(2007)11 एससीसी 92 को एक आज्ञापालक के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और इसे राज्य में संविधान पीठ के फैसले **कर्नाटक बनाम उमादेव (2006)4 एससीसी 1** द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को दरकिनार करते हुए उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं माना जाना चाहिए।

विशेष रूप से उक्त निर्णय से निम्नलिखित अंशों पर निर्भरता जताई गई थी:-

> "90. हम यह जानकर व्यथित हैं कि इस विषय पर कई घोषणाओं के बावजूद, न्यायिक अनुशासन की बुनियादी बातों के उल्लंघन से जुड़े मामलों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। उच्च न्यायालयों के विद्वान एकल न्यायाधीश और पीठ तथ्यों में मामूली अंतर का हवाला देकर समन्वय और यहां तक कि बड़ी पीठों द्वारा निर्धारित फैसले और कानून का पालन करने और स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं। इसलिए, यह दोहराना आवश्यक हो गया है कि संवैधानिक लोकाचार का अनादर और अनुशासन का उल्लंघन न्यायिक संस्थान की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रभाव डालता है और आकस्मिक मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित करता है। यह याद रखना आवश्यक है कि पूर्व छह दशकों में इस देश में विकसित हुई न्यायिक न्यायशास्त्र का एक महत्वपूर्ण लक्षण है कि पूर्वानुमान और निश्चितता, और इसके बढ़ते हुए असमर्थितता का बढ़ना, सुपीरियर न्यायिकी के विरुद्ध असमर्थितता के समाप्ति में अपरिहार्य हानि करेगा क्योंकि घास की जड़ पर स्थित न्यायालय यह नहीं निर्धारित कर सकेंगे कि कौनसी निर्णय सही कानून प्रस्तुत करती है और कौनसी को अनुसरण किया जाना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया है कि सुप्रीम कोर्ट की पिछली बड़ी बेंच के फैसले का कोई भी संदर्भ सुप्रीम कोर्ट के बाद के फैसले को केवल तभी प्रस्तुत करेगा जब पहले के फैसले

का अनुपात इसके साथ विरोधाभास में हो। क्योंकि कानून की धाराओं का व्याख्यान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया है, इसलिए कानून की धाराओं का व्याख्यान करने वाले उक्त निर्णयों को पर-इनकुरियम कहा नहीं जा सकता है।

यह तर्क देने के लिए **संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य**[9] का संदर्भ दिया गया है कि प्रति-इनक्यूरियम का नियम अनुपात निर्णय पर सख्ती से और सही ढंग से लागू होता है, न कि आदेश का पालन करने के लिए। **बिहार राज्य बनाम कलिका कुएर @ कलिका सिंह और अन्य**[10], " पर आधारित होकर यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय की एक समकक्ष पंजी की पूर्व निर्णय को इस कारण पर-इनकुरियम कहा नहीं जा सकता है क्योंकि उस पंजी के सामने और भी कुछ संभावित पहलुओं को ध्यान में नहीं रखा गया था या उससे पहले उसके सामने नहीं उठाया गया था।

यह तर्क दिया जाता है कि उच्च न्यायालय के लिए उचित मार्ग न्यायालय की छोटी पीठों की राय के बजाय सर्वोच्च न्यायालय की बड़ी पीठ द्वारा व्यक्त की गई राय का पता लगाना और उसका पालन करना है। यह प्रथा अब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून के शासन में समाहित हो गई है। **पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड चंडीगढ़ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य**[11], और **भारत संघ बनाम के.एस. सुब्रमण्यन**[12], पर भरोसा रखा गया है।

[9] एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट 1745

[10] 2003(5) एससीसी 448

[11] (1990)3 एससीसी 682

[12] एआईआर1976 एससी 2433

विद्वान वरिष्ठ वकील श्री मोहन जैन ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 24 ने एक काल्पनिक कल्पना रची है, यानी कानून के संचालन से, अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई है। काल्पनिक कथा कोई नियम नहीं बल्कि एक प्रावधान है जिसे कानून में सत्य माना जाता है। उन्होंने ब्लैक लॉ डिक्शनरी का संदर्भ दिया, जिसमें ` कानूनी कल्पना ' का विवरण है कि यह `एक मान्यता है कि कुछ सत्य है हालांकि यह असत्य हो सकता है, विशेष रूप से न्यायिक तर्क में एक कानूनी नियम को कैसे कार्य करता है इसे बदलने के लिए बनाई गई है। **वाणिज्यिक कर आयुक्त, रांची और अन्य बनाम स्वर्ण रेखा कोक्स एंड कोलास (पी) लिमिटेड**[13], का संदर्भ दिया गया है। यह तर्क दिया जाता है कि कानूनी कल्पना रचने वाले प्रावधानों की व्याख्या करते समय, न्यायालय को उस उद्देश्य का पता लगाना चाहिए जिसके लिए कल्पना बनाई गई है और ऐसा करने के बाद, उन सभी तथ्यों और परिणामों को मान लेना चाहिए जो कल्पना को प्रभावी बनाने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम हैं। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि अधिनियम किसानों के लाभ के लिए अधिनियमित एक लाभकारी कानून है, इसलिए कार्यवाही का समाप्त होना अधिनियम की धारा 24(2) का अपरिहार्य परिणाम है। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280** पर भरोसा रखा गया है यह तर्क देने के लिए कि किसी तथ्य के अस्तित्व को मानने के उद्देश्य से विधायिका द्वारा कानूनी कल्पना का निर्माण कियाजा सकता है जो ऐसा करता है वास्तव में अस्तित्व में नहीं है ।इसे निम्नलिखित प्रभाव से आयोजित किया गया:-

> “18. विधायिका किसी ऐसे तथ्य के अस्तित्व को मानने के उद्देश्य से कानूनी कल्पना रचने में सक्षम है जो वास्तव में मौजूद नहीं है।धारा 10 की उप-धारा (3) में दो डीमिंग प्रावधान शामिल थे जैसे कि "अधिगृहीत

[13] (2004)6 एससीसी 689

माना गया" और "पूरी तरह से निहित माना गया"।आइए पहले हम "मान्य प्रावधान" के कानूनी परिणामों की जांच करें।कानूनी कल्पना रचने के प्रावधान की व्याख्या करते समय, अदालत को यह सुनिश्चित करना होता है कि कल्पना किस उद्देश्य से बनाई गई है और यह पता लगाने के बाद इसके अनुसार, न्यायालय को उन सभी तथ्यों और परिणामों को मानना होगा जो कल्पना को प्रभावी बनाने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम हैं। **दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य, (1996)2 एससीसी 449** में इस न्यायालय ने माना कि कानूनी कल्पना के तहत जिसे अस्तित्व में माना जा सकता है वह तथ्य हैं, न कि कानूनी परिणाम जो कानून से उत्पन्न नहीं होते हैं जैसा कि वह खड़ा है **रवि खुल्लर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (2007)5 एससीसी 231** में, सुप्रीम कोर्ट ने सीमा की अवधि की गणना के मुद्दों की जांच की।न्यायालय ने माना कि तीन स्थितियों की कल्पना की जा सकती है:"

(ए) जहां परिसीमा अधिनियम अपने बल पर लागू होता है;

(बी) जहां परिसीमा अधिनियम के प्रावधान संशोधनों के साथ या बिना संशोधनों के किसी विशेष क़ानून पर लागू किए जाते हैं; और

(सी) जहां विशेष क़ानून स्वयं सीमा की अवधि निर्धारित करता है और समय के विस्तार और या देरी को माफ करने का प्रावधान करता है उन विचारों को जाँचते हुए, यह निर्धारित किया गया कि निरस्त्रीकृत निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए लिए जाने वाले समय को बाहर रखा जाता है क्योंकि प्रमाणित प्रतिलिपि को चुनौती देने वाले अपील / संशोधन / समीक्षा इत्यादि की ओर मोड़ने के लिए आवश्यक है, लेकिन न्यायालय को इस अधिनियम के धारा 11-ए को पढ़ने की अनुमति नहीं है

कि निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए समय को बाहर करें।

29. एक और तर्क उठाया गया कि कानून बनाना न्यायाधीशों का काम नहीं है और न ही न्यायाधीश क़ानून में शब्द जोड़ सकते हैं क्योंकि कैसस ओमिसस का सिद्धांत भारत में लागू नहीं है।, निर्भरता **बी. प्रेमानंद और अन्य बनाम मोहन कोइकल और अन्य पर रखी गई है, (2011)4 एससीसी 266**, जिसमें, यह माना गया था कि: -

"9. इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि व्याख्या की प्रत्येक प्रणाली में किसी क़ानून की व्याख्या का पहला और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत व्याख्या का शाब्दिक नियम है। व्याख्या के अन्य नियम उदा. शरारत नियम, उद्देश्यपूर्ण व्याख्या आदि का सहारा केवल तभी लिया जा सकता है जब किसी क़ानून के स्पष्ट शब्द अस्पष्ट हों या कोई स्पष्ट परिणाम न दें या यदि शाब्दिक रूप से पढ़ा जाए तो क़ानून का उद्देश्य ही रद्द हो जाएगा। जहां किसी क़ानून के शब्द बिल्कुल स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, वहां शाब्दिक नियम के अलावा व्याख्या के सिद्धांतों का सहारा नहीं लिया जा सकता है देखें **स्वीडिश मैच एबी बनाम सेबी** [14]।

10. **प्रकाश नाथ खन्ना बनाम सी.आई.टी.**[15] में कहा गया है, किसी क़ानून में प्रयुक्त भाषा विधायी इरादे का निर्धारक कारक है।। माना जाता है कि विधायिका ने कोई गलती नहीं की है। अनुमान यह है कि इसने वही कहना

[14] (2004)11 एससीसी 641

[15] **2004 9 एससीसी 686**

चाहा जो इसने कहा है। यह मानते हुए कि विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दों में कोई दोष या चूक है, न्यायालय उस कमी को सुधार या पूरा नहीं कर सकता है, **देखिए दिल्ली वित्तीय निगम. बनाम राजीव आनंद, (2004)11 एससीसी 625**। जहां विधायी मंशा भाषा से स्पष्ट है, अदालत को **आंध्र प्रदेश सरकार बनाम रोड रोलर्स ओनर्स वेलफेयर एसोसिएशन, (2004)6 एससीसी 210** के तहत इसे प्रभावी करना चाहिए, और अदालत को इसकी आड़ में कानून में संशोधन करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। व्याख्या का.

16. जहां शब्द असंदिग्ध हैं, वहां व्याख्या के किसी भी नियम को आयात करने की कोई गुंजाइश नहीं है (**पांडियन केमिकल्स लिमिटेड बनाम सीआईटी, (2003)5 एससीसी 590** के अनुसार)। केवल वहीं जहां किसी क़ानून के प्रावधान अस्पष्ट हों, वहां अदालत शाब्दिक या सख्त निर्माण से हट सकती है (**नसीरुद्दीन बनाम सीता राम अग्रवाल, (2003)2 एससीसी 577** के अनुसार)। जहां किसी क़ानून के शब्द स्पष्ट और स्पष्ट हों तो उन पर प्रभाव डाला जाना चाहिए (**भाईजी बनाम एसडीओ, (2003)1 एससीसी 692 के अनुसार**)

17. बिना किसी संदेह के कहा जा सकता है कि कुछ असाधारण मामलों में अर्थ-नियन्त्रण के शास्त्र के लक्ष्य के अनुसार एक उद्देश्य-निर्माण, हेडन का मामला (1584) 2 को रेप 7a, हानि नियम आदि, का अनुप्रयोग करके उदाहरण से हटने की जा सकती है लेकिन ऐसा केवल बहुत ही असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए। आमतौर पर, अदालत के लिए शाब्दिक नियम से हटना उचित नहीं है क्योंकि यह वास्तव में व्याख्या की आड़ में

कानून में संशोधन होगा, जो स्वीकार्य नहीं है। (**जे.पी. बंसल बनाम राजस्थान राज्य, (2003)5 एससीसी 134** और **झारखंड राज्य बनाम गोविंद सिंह, (2005)10 एससीसी 437** देखें)]। कानून में संशोधन करना विधायिका का काम है, न कि अदालत का (**झारखंड राज्य बनाम गोविंद सिंह, 2005)10 एससीसी** 437 के तहत।"

30. यह भी तर्क दिया गया है कि विधायिका ने स्पष्ट रूप से विज्ञापन-अंतरिम निषेधाज्ञा या न्यायालयों द्वारा दिए गए स्थगन की अवधि को बाहर कर दिया है, जब उसने धारा 19 में उप-धारा 7, धारा 25 में प्रावधान और अधिनियम की धारा 69 में स्पष्टीकरण शामिल किया था।। इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि विधायिका का इरादा केवल कुछ निश्चित अवधि को बाहर करने का स्पष्ट है जैसा कि कानून द्वारा पूर्वोक्त प्रावधानों में प्रदान किया गया है, न कि अन्य अवधियों के

संबंधमें।इस पर भरोसा किया गया है **ए.आर.वाई. शिवराम प्रसाद बहादुर बनाम आयकर आयुक्त, हैदराबाद**[16] और **सुगंथी सुरेश कुमार बनाम जगदीशन**[17]

31. विद्वान वरिष्ठ वकील श्री रणदीप राय ने उठाए गए तर्कों का समर्थन करने के अलावा**, जगजीत सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, डब्ल्यू.पी. (सी) नंबर 2806/2004 और 2807-2934/2004** के मामले में फैसले का हवाला दिया। 27.5.2014 को फैसला सुनाया गया, जिसमें शिव राज के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए, दिल्ली उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने माना कि इससे कोई फर्क

[16] 1971(3) एससीसी 726

[17] (2002)2 एससीसी 420.

नहीं पड़ता कि मुआवजे का भुगतान न करने या कब्जा न लेने के पीछे क्या कारण था ।यदि विधायिका उस अवधि को छोड़कर उपरोक्त शर्तों को पूरा करना चाहती थी, जिसके दौरान न्यायालय के आदेश के माध्यम से रोक या निषेधाज्ञा के कारण भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही रोक दी गई थी, तो इसे स्पष्ट रूप से बताया जा सकता था। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि यदि कानून और समानता के बीच कोई टकराव है, तो कानून को ही प्रबल होना होगा और समानता केवल कानून की पूरक हो सकती है, लेकिन यह कानून को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है ताकि उसे खत्म कर दिया जा सके। इस प्रकार, जब अधिनियम की धारा 24 में ठहरने की अवधि को बाहर करने का प्रावधान नहीं किया गया है, तो क़ानून के स्पष्ट प्रावधानों पर न्यायसंगत विचार लागू नहीं किया जा सकता है।

32. श्री राय ने पोपट बहिरू गोवर्धने और अन्य बनाम **विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी और अन्य, (2013)10 एससीसी 765** पर भरोसा करते हुए कहा है कि यदि क़ानून इसकी अनुमति नहीं देता है तो न्यायसंगत आधार पर परिसीमा की अवधि को बढ़ाना स्वीकार्य नहीं है। कानूनी कहावत **ड्यूरा लेक्स सेड लेक्स** लागू की गई, जिसका अर्थ है कि कानून कठिन है लेकिन यह कानून है, इसलिए किसी क़ानून की व्याख्या करते समय असुविधा एक निर्णायक कारक नहीं है।। उक्त मामले में, न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि पुराने अधिनियम की धारा 28-ए के तहत आवेदन दाखिल करने की अवधि कब से शुरू होगी, यानी कि फैसले की तारीख से या अदालत के फैसले की जानकारी की तारीख से।।इसे नीचे दिए गए रूप में रखा गया था:-

16. यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि परिसीमा का कानून किसी विशेष पक्ष को कठोरता से प्रभावित कर सकता है लेकिन जब क़ानून ऐसा निर्धारित करता है तो इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। न्यायालय के पास न्यायसंगत आधार पर परिसीमा की अवधि बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं है। वैधानिक प्रावधान किसी विशेष पक्ष के लिए कठिनाई या असुविधा का कारण बन सकता है लेकिन न्यायालय के पास इसे पूर्ण प्रभाव देते हुए लागू करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। कानूनी कहावत ड्यूरा लेक्स सेड लेक्स जिसका अर्थ है "कानून कठिन है लेकिन यह कानून है", ऐसी स्थिति में आकर्षित होता है। यह लगातार माना जाता रहा है कि, किसी क़ानून की व्याख्या करते समय "असुविधा" एक निर्णायक कारक नहीं है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। “वैधानिक प्रावधान से उत्पन्न परिणाम कभी भी बुरा नहीं होता है। किसी न्यायालय के पास उस प्रावधान को नज़रअंदाज करने की कोई शक्ति नहीं है, जिसे वह अपने संचालन से उत्पन्न संकट मानता है।"((**मार्टिन बूरा लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन ऑफ कलकत्ता, एआईआर 1966 एससी 529 और रोहिताश कुमार बनाम ओम प्रकाश शर्मा, (2012)13 एससीसी 792 देखें।"**

33. भूस्वामियों के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित एक अन्य निर्णय मोहम्मद गाज़ी बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, **(2000)4 एससीसी 342** था। यह माना गया कि किसी व्यक्ति को बिना किसी गलती के केवल राज्य के पक्ष में इक्विटी खंड का सहारा लेकर दंडित नहीं किया जा सकता है, खासकर जब ऐसा पाया जाता है कि ऐसे व्यक्ति को लाभ नहीं मिला है या जारी किए गए स्थगन आदेश के कारण राज्य को लाभ से न्यायालय द्वारा वंचित किया गया है। । उपरोक्त मामले में, राज्य द्वारा निविदाएं आमंत्रित करने के लिए एक नोटिस जारी किया गया था। उत्तरदाताओं

में से एक को उच्चतम बोली लगाने वाला घोषित किया गया था, लेकिन उसकी बोली स्वीकार नहीं की गई और रद्द कर दी गई। पहली निविदा प्रक्रिया में उच्चतम बोली लगाने वाले द्वारा दायर एक रिट याचिका में, अधिकारियों को नए निविदा नोटिस के अनुसार कोई भी कदम उठाने से रोकने का आदेश पारित किया गया था। दूसरी निविदा प्रक्रिया में उच्चतम बोली लगाने वाले को उक्त रिट याचिका में एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने राज्य को जमा की गई बयाना राशि वापस करने का निर्देश देते हुए रिट याचिका का निपटारा कर दिया। बाद की निविदा प्रक्रिया में, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता उच्चतम बोली लगाने वाला था। दूसरी टेंडर प्रक्रिया में सबसे ऊंची बोली लगाने वाले ने अपना पैसा वापस मांगा बयाना राशि इस कारण से कि तेंदू पत्ता, निविदा की विषय वस्तु, एक खराब होने वाली वस्तु, पहले ही नष्ट हो गई थी और सड़ गई थी जिसके परिणामस्वरूप समय बीतने के साथ इसका मूल्य बेकार हो गया था। अपीलकर्ता को स्वीकृत बोली के संदर्भ में एक समझौता निष्पादित करने और शेष निविदा मूल्य जमा करने के लिए कहा गया था। यह आशंका जताते हुए कि अधिकारी उसकी धरोहर राशि जब्त कर सकते हैं और उसे काली सूची में डाल सकते हैं, दूसरी बोली प्रक्रिया में सबसे अधिक बोली लगाने वाले ने एक रिट याचिका दायर की । यह पाया गया कि अंतरिम आदेश के कारण, दूसरी प्रक्रिया में उच्चतम बोली लगाने वाला अपनी बोली की स्वीकृति का लाभ नहीं उठा सका। इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया:-

"7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, समानता का सिद्धांत, अर्थात्, **एक्टस क्यूरिया नेमिनेम ग्रेवबिट -** अदालत का एक कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, लागू होगा। यह कहावत न्याय और अच्छी

समझ पर आधारित है जो कानून के प्रशासन के लिए एक सुरक्षित और निश्चित मार्गदर्शक का काम करती है। दूसरी कहावत है, लेक्स नॉन कॉजिट एड इम्पॉसिबिलिया - कानून ऐसा नहीं करता है किसी व्यक्ति को वह कार्य करने के लिए बाध्य करना जिसे वह संभव नहीं कर सकता । यह समझा जाता है कि कानून स्वयं और उसका प्रशासन अपनी सामान्य सूक्तियों में, असंभवताओं को मजबूर करने के सभी इरादों को अस्वीकार करता है, और कानून के प्रशासन को विशेष मामलों के विचार में उस सामान्य अपवाद को अपनाना चाहिए। उपरोक्त कहावतों की प्रयोज्यता को इस न्यायालय द्वारा **राज कुमार डे बनाम तारपदा डे, (1987)4 एससीसी 398** और **गुरशरण सिंह बनाम नई दिल्ली नगरपालिका समिति, (1996)2 एससीसी 459** में अनुमोदित किया गया है।"

34. **जमाल उद्दीन अहमद बनाम अबू सालेह नजमुद्दीन और अन्य, (2003)4 एससीसी 257 में,** न्यायालय एक चुनाव याचिका की प्रस्तुति से निपटने के लिए लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 की जांच कर रहा था। न्यायालय ने इस कहावत का उल्लेख किया - कर्सस क्यूरिया इस्ट लेक्स क्यूरिया - न्यायालय का अभ्यास ही न्यायालय का कानून है। यह माना गया कि प्रत्येक न्यायालय अपने स्वयं के रिकॉर्ड का संरक्षक और अपने स्वयं के अभ्यास का स्वामी है और जहां एक अभ्यास अस्तित्व में है, इसका पालन करना अत्यधिक तात्कालिकता और आवश्यकता के मामलों को छोड़कर सुविधाजनक है, क्योंकि यह अभ्यास है, यद्यपि इसके लिए कोई कारण नहीं बताया जा सकता; कानून का गहन अभ्यास आम तौर पर उन सिद्धांतों पर आधारित होता है जो न्याय और सुविधा पर आधारित होते हैं। यह भी माना गया कि यदि **उत्पल दत्ता बनाम इंद्रा गोगोई** में गौहाटी उच्च न्यायालय द्वारा

दिए गए तर्क (ई.पी. संख्या 7/2001 में विविध मामला संख्या 13/2001, 29.8.2002 को निर्णय लिया गया) को स्वीकार किया जाता है तो अजीब परिणाम होंगे। उक्त मामले में, गौहाटी उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय VIII-A के नियम 1 को संविधान के अनुच्छेद 329 के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 80, 80-A और 81 के अधिकारातीत के रूप में रद्द कर दिया गया था। इस प्रकार, यह माना गया कि गौहाटी उच्च न्यायालय के स्टाम्प रिपोर्टर को प्रस्तुत की गई सभी चुनाव याचिकाएँ गैर-स्थायी होंगी। यह भी निम्नानुसार अवलोकन किया गया था:-

21. हर्बर्ट ब्रूम ने लीगल मैक्सिम्स पर अपने प्रसिद्ध कार्य की प्रस्तावना में कहा है- "कानूनी विज्ञान में, शायद किसी भी अन्य की तुलना में अधिक बार, पहले सिद्धांतों का संदर्भ दिया जाना चाहिए। कानून के मूल सिद्धांतों या पहले सिद्धांतों को अक्सर सिद्धांतों के रूप में व्यक्त किया जाता है जो स्पष्ट रूप से कारण, सार्वजनिक सुविधा और आवश्यकता पर आधारित होते हैं। कानूनी तर्क और कानूनी सिद्धांतों के अनुप्रयोग में, जो पहले अज्ञात थे, सूक्ष्मताओं और भेदों को पेश करने की आधुनिक प्रवृत्ति ने सरल मौलिक नियमों के मूल्यों को कम करने के बजाय पहले सिद्धांतों के साथ एक सटीक परिचित को अधिक आवश्यक बना दिया है। मौलिक नियम कानून का आधार हैं; विशेष मामले की अत्यावश्यकताओं और स्वयं उपस्थित परिस्थितियों की नवीनता के अनुसार या तो सीधे लागू किया जा सकता है या योग्य या सीमित किया जा सकता है।**धन्नालाल बनाम कलावतीबाई[18] में।**

[18] (2002) 6 एससीसी 16

35. औद्योगिक वित्त निगम में ऑफ इंडिया लिमिटेड के मामले (सुप्रा) में, अदालत ने लैटिन कहावतों की जांच करते हुए विचार किया कि कानून किसी व्यक्ति को वह करने के लिए मजबूर नहीं करता है जो वह संभवतः नहीं कर सकता है और जहां कानून एक कर्तव्य या आरोप बनाता है, और पार्टी अक्षम है यदि वह इसे निष्पादित करता है, बिना किसी चूक के, और उसके पास कोई उपाय नहीं है, तो कानून सामान्यतः उसे माफ कर देगा।न्यायालय ने निम्नलिखित तरीके से मैक्सिम पर चर्चा की: -

"30 अंग्रेजी निर्णय **लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया** में संदर्भित लैटिन कहावत को सामान्य अंग्रेजी स्वीकृति में इम्पोटेशिया एक्सक्यूसैट लेजेम के रूप में भी व्यक्त किया गया है, कानून किसी व्यक्ति को वह करने के लिए मजबूर नहीं करता है जो वह संभवतः नहीं कर सकता है। इस प्रकार दायित्व को पूरा करने के लिए हमेशा एक अजेय विकलांगता होनी चाहिए और यह रोमन कहावत **निमो टेनेतुर एड इम्पॉसिबल** के समान है। ब्रूम के कानूनी सिद्धांतों में स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

:" यह एक सामान्य नियम है जिसमें व्यापक व्यावहारिक उदाहरणों की पर्याप्त सीगु सकती है कि इम्पोटेन्शिया एक्स्क्यूज़ात लेगेम; जब कानून एक कर्तव्य या आरोप बनाता है, और प्रयास करने में प्रतिबंधित कर दिया जाता है, बिना किसी भी उसके दोष के, और उसके पास कोई सुधार का साधन नहीं है, वहां कानून सामान्यत: उसे क्षमा करेगा। : और यद्यपि प्रदर्शन की असंभवता आम तौर पर उस दायित्व को पूरा न करने के लिए कोई बहाना नहीं है जिसे एक पक्ष ने अनुबंध द्वारा स्पष्ट रूप से किया है, फिर भी जब दायित्व कानून द्वारा निहित है, तो प्रदर्शन की असंभवता एक अच्छा बहाना है। इस प्रकार, एक मामले में जिसमें एक जहाज के माल के

ग्राहकों को एक डॉक हड़ताल के कारण जल्दी से जहाज से सामान उतारने से रोका गया था, अदालत ने यह निर्णय लिया कि एक निर्दिष्ट समय में अनलोड करने के लिए किसी व्यक्तिगत समझौते की अभाव में एक यात्री समय में अनलोड करने के लिए शारीरिक रूप से असमर्थ है और इसमें एक उचित समय के भीतर अनलोड करने के लिए स्वाभाविक कर्तव्य है, इसलिए मैक्सिम **लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया** लागू होता है और लिंडले, एल.जे., ने कहा: 'हमें निहित दायित्वों से लेना-देना है, और मुझे ऐसे किसी भी मामले की जानकारी नहीं है जिसमें हर्जाना देने का दायित्व किसी व्यक्ति पर ऐसा न करने के लिए डाला गया हो जो कि अन्य कारणों से असंभव हो गया हो। उसका नियंत्रण

“31. लैटिन कहावत का अर्थ खोजने का यह प्रयास केवल उस स्थिति की पहचान करने के लिए किया गया है जिसने रानी की पीठ के विद्वान न्यायाधीश को उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार, दायित्व के निष्पादन की असंभवता होनी चाहिए। इस प्रकार वर्तमान में हमारे सामने विचाराधीन तथ्यात्मक स्थिति का आकलन करना होगा कि क्या वास्तव में ऐसी कोई असंभवता थी या नहीं। आइए हम उन सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से बताएं कि क़ानून के तहत बनाए गए अधिकारों को ठोस कारणों के बिना ख़त्म नहीं किया जा सकता है, न कि केवल तुच्छता के आधार पर। किसी भी घटना में, गारंटी विलेख के संदर्भ में प्रदत्त अधिकार को एक स्वतंत्र अधिकार नहीं कहा जा सकता है, जिसे क़ानून द्वारा मान्यता प्राप्त है और इस प्रकार किसी भी तरह से उचित कारण के बिना इसे कम नहीं किया जा सकता है। **बेली बनाम डी क्रेस्पिग्नी, (1869)4 क्यूबी 180**, हमारे विचार में विचाराधीन मामले की तथ्यात्मक स्थिति में कोई सहायता नहीं देता है। वास्तव में प्रदर्शन की असंभवता थी जिसने स्थिति की असंभवता के कारण और ऐसे कारणों

से कि यह गारंटर के नियंत्रण से परे था, न्यायालय को गारंटर को उसके प्रदर्शन से छूट देने के लिए प्रेरित किया। हालांकि, वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है।'

36. **नवीनचंद्र मफतलाल बनाम सीआईटी, एयर 1955 एससी 58** में संवित की एक कंस्टीट्यूशन बेंच का निर्णय था जिसमें कहा गया था कि संवित में जो शब्द है, उसे किसी भी संकीर्ण और पेडेंटिक अर्थ में नहीं व्याख्या किया जाना चाहिए और प्रत्येक सामान्य शब्द को उस सभी अध्यायिक या उप-विषयों तक फैलने के लिए माना जाना चाहिए जो उसमें सावधानीपूर्वक और उचित रूप से समाहित हो सकते हैं।

"6. यह याद रखना चाहिए कि हमारे सामने जो प्रश्न है वह संविधान अधिनियम में आने वाले एक शब्द की सही व्याख्या से संबंधित है, जैसा कि कहा गया है, किसी भी संकीर्ण और पांडित्यपूर्ण अर्थ में नहीं लगाया जाना चाहिए। ।ग्वायर, सी.जे. ने 1938 के मध्य प्रांत और बरार अधिनियम, 14 के पृष्ठ 36-37 में कहा कि जो नियम अन्य क़ानूनों की व्याख्या पर लागू होते हैं, वे इस आरक्षण के अधीन एक संवैधानिक अधिनियम की व्याख्या पर समान रूप से लागू होते हैं कि उनका आवेदन यह अधिनियम की विषय-वस्तु द्वारा ही आवश्यक है। यह याद रखना चाहिए कि हमारे सामने समस्या प्रविष्टि 54 में आने वाले एक शब्द का अर्थ निकालने की है जो विधायी शक्ति का प्रमुख है। ज्वायर, सी.जे. ने संयुक्त प्रांत बनाम अतीका बेगम में पृष्ठ 134 पर इस बारे में स्पष्ट कहा है कि सूचियों में से कोई भी वस्तु संकीर्ण या प्रतिबंधित अर्थ में पढ़ा नहीं जाना चाहिए और प्रत्येक सामान्य शब्द को उस सभी अध्यायिक या उप-विषयों तक फैलने के लिए माना जाना चाहिए जो उसमें सावधानीपूर्वक और उचित रूप से समाहित हो सकते हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है - और इसे मुख्य न्यायाधीश चागला ने स्वीकार किया है - कि विधायी शक्तियां प्रदान

करने वाली सूची में एक प्रविष्टि का अर्थ लगाते समय, उनके सामान्य अर्थ के अनुसार यथासंभव व्यापक निर्माण उसमें इस्तेमाल किए गए शब्दों पर किया जाना चाहिए। दो विधायी सूचियों में दो परस्पर विरोधी प्रावधानों को समेटने के लिए किसी शब्द के अर्थ को कम करने के लिए विधायी अभ्यास का संदर्भ स्वीकार्य हो सकता है जैसा कि सी.पी. और बरार अधिनियम मामले में किया गया था या उनके सामान्य अर्थ को विस्तृत करने के लिए जैसा कि **बॉम्बे राज्य बनाम एफ.एन बलसारा, एआईआर 1951 एससी 318** में है हालाँकि, व्याख्या का मुख्य नियम यह है कि शब्दों को उनके सामान्य, प्राकृतिक और व्याकरणिक अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए, इस शर्त के अधीन कि विधायी शक्ति प्रदान करने वाले संवैधानिक अधिनियम में शब्दों का अर्थ लगाते समय शब्दों पर सबसे उदार निर्माण किया जाना चाहिए ताकि इसका प्रभाव उनके व्यापकतम आयाम में हो सकता है।"

37. पक्षों के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित निर्णयों के आलोक में, हम पाते हैं कि व्याख्या का मूल नियम यह है कि शब्दों को उनके सामान्य प्राकृतिक व्याकरणिक अर्थ दिए जाने चाहिए, जो इस शर्त के अधीन हैं कि विधायी प्रदान करने वाले संवैधानिक अधिनियम में शब्दों का अर्थ लगाते समय शब्दों पर सबसे उदार निर्माण की शक्ति होनी चाहिए ताकि उनका प्रभाव उनके व्यापक आयाम में हो सके। लाभकारी कानून की उदार व्याख्या होनी चाहिए ताकि क़ानून के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके।

38. उच्चतम न्यायालय की किसी पीठ द्वारा दिया गया निर्णय सह-समान शक्ति वाली पीठ पर बाध्यकारी होता है। हालाँकि, किसी भी संदेह की स्थिति में, समान संख्या वाली पीठ द्वारा मामले को बड़ी पीठ के पास भेजा जा सकता है।

हालाँकि, यह बड़ी बेंच है, जो कम कोरम की बेंच द्वारा व्यक्त किए गए विचार के विपरीत विचार कर सकती है। लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं केवल यह तथ्य कि कोई तर्क नहीं उठाया गया था या तर्क उच्च न्यायालय की राय में भ्रामक है या क़ानून के किसी विशेष प्रावधान पर बेंच द्वारा विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया था, ऐसा कोई आधार नहीं है जिसके आधार पर बाध्यकारी मिसाल को नजरअंदाज किया जा सके। ।उच्च न्यायालय के लिए उचित मार्ग न्यायालय की छोटी पीठों की अपेक्षा बड़ी पीठ द्वारा व्यक्त की गई राय का पता लगाना और उसका पालन करना है। बड़ी बेंच द्वारा व्यक्त की गई राय पर किसी एक पंक्ति को इधर-उधर पढ़कर नहीं, बल्कि पूरे फैसले को पढ़कर ही पहुंचा जा सकता है। यदि सर्वोच्च न्यायालय की सह-समान शक्ति वाली पीठों के निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है, तो दोनों ही बाध्यकारी उदाहरण हैं, यह उच्च न्यायालय के लिए उन निर्णयों का पालन करने के लिए खुला है, जिन्हें वह उचित समझता है।

39. **मैसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड डूंडाहेड़ा बनाम उमराव और अन्य, 1981 पीएलआर 335** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मुद्दे की जांच की है कि सुपीरियर कोर्ट द्वारा पारित विरोधाभासी निर्णयों में से किसका पालन किया जाना है। यह माना गया कि उच्च न्यायालय को उस फैसले का पालन करना चाहिए जो उसे कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है। न्यायालय नेनीचे दिए अनुसार निर्णय दिया:-

"23. ..... जब सुपीरियर कोर्ट के निर्णय सह-समान पीठों के होते हैं और इसलिए समान प्राधिकारी के होते हैं तो उनके महत्व को अनिवार्य रूप से उसके तर्क और तर्क पर विचार किया जाना चाहिए, न कि उस समय और तारीख की आकस्मिक परिस्थितियों पर जिस दिन उन्हें प्रस्तुत किया गया था। यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालयों के दो सीधे विरोधाभासी निर्णय और समान प्राधिकारी की सीमा होती है तो वे दोनों नीचे के न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में अनिवार्य रूप से एक विकल्प चुनना पड़ता है, हालांकि यह कठिन है। सैद्धांतिक तौर पर मुझे यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो उसे कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है। केवल समय की घटना यह है कि क्या उच्च न्यायालय की सह-समान पीठों के निर्णय पहले या बाद के हैं, यह एक ऐसा विचार है जो मुझे शायद ही प्रासंगिक लगता है।"

40. क़ानूनों की व्याख्या के बुनियादी सिद्धांतों पर ध्यान देने के साथ, हम अधिनियम की धारा 24 के दायरे को तय करने के लिए आगे बढ़ते हैं। भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त होने की पाँच वर्ष की अवधि पुरस्कार की घोषणा के बाद शुरू होती है। प्रश्न यह उठता है कि यदि किसी न्यायालय द्वारा राज्य और/या उसकी एजेंसियों को कब्ज़ा लेने से रोकने का आदेश पारित किया गया है, तो क्या कब्ज़ा न लेने का राज्य का कार्य अभी भी कार्यवाही को समाप्त कर देगा।

41. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 24 एक कानूनी कल्पना प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा अधिग्रहण की कार्यवाही कानून के संचालन से समाप्त हो जाती है यानी जहां अधिनियम के शुरू होने से पांच साल या उससे अधिक पहले पुरस्कार

दिया गया है, लेकिन भूमि का भौतिक कब्ज़ा नहीं है नहीं लिया गया अथवा मुआवजा नहीं दिया गया।

42. अधिनियम की धारा 24 के उपखण्ड (2) की व्याख्या करते समय इसकी आवश्यकता है पुराने अधिनियम के तहत पुरस्कार प्रदान करने की प्रक्रिया और मुआवज़े का कब्ज़ा लेने या जमा करने के प्रावधानों की जांच करें। पुराने अधिनियम के तहत, उक्त अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन की तारीख से दो साल की अवधि के भीतर एक पुरस्कार की घोषणा की जानी होती है। हालाँकि, अधिनियम की धारा 11-ए के स्पष्टीकरण में यह विचार किया गया है कि जिस अवधि के दौरान ऐसी घोषणा के अनुसरण में की जाने वाली कोई कार्रवाई या कार्यवाही न्यायालय के आदेश द्वारा रोक दी जाती है, ऐसी अवधि को बाहर रखा जाएगा। इसलिए, कब्ज़ा न लेने या मुआवज़ा न देने की अवधि की गणना करते समय, पुराने अधिनियम की धारा 11-ए के संदर्भ में रहने की अवधि को बाहर करना आवश्यक था। हालाँकि पुराने अधिनियम की धारा 11-ए न्यायालयों द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश की स्थिति में पुरस्कार प्रदान करने में समय के बहिष्कार से संबंधित है, लेकिन पुरस्कार की घोषणा के बाद भी कब्जे की रक्षा करने वाला एक अंतरिम आदेश कार्यवाही को अनुचित या अवैध नहीं बनाएगा।

43. **यूसुफभाई नूरमोहम्मद नंदोलिया बनाम गुजरात राज्य, (1991)4 एससीसी 531** का संदर्भ दिया जाए, जिसमें न्यायालय ने माना था कि फैसले के बाद भी बेदखली पर रोक राज्य को कब्जा लेने से नहीं रोकेगी। उसने कहा था: -

“8. उक्त स्पष्टीकरण यथासंभव व्यापक शब्दों में है और, हमारी राय में, उक्त अधिनियम की धारा 11 के तहत अवार्ड देने से पहले के कार्यों या कार्यवाहियों तक स्पष्टीकरण में

निर्दिष्ट कार्रवाई या कार्यवाही को सीमित करने का कोई अधिकार नहीं है।सबसे पहले, जैसा कि ज्ञानी एकल न्यायाधीश ने स्वयं माना है, जब मामला धारा 17 द्वारा कवर होता है, तो अवार्ड दिलाने से पहले जबान जा सकता है, और हमें कोई कारण नहीं दिखता कि उपर्युक्त व्याख्या को इसका विभिन्न अर्थ दिया जाना चाहिए कि क्या मामला धारा 17 द्वारा कवर होता है या नहीं। दूसरी ओर, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 11-ए का उद्देश्य उस भूमिधारक को लाभ प्रदान करना है जिसकी भूमि स्पष्टीकरण के अंतर्गत आने वाले मामलों में धारा 6 के तहत घोषणा के बाद अर्जित की गई है। लाभ यह है कि अवार्ड घोषणा के दो साल की अवधि के भीतर दिया जाना चाहिए, अन्यथा अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो जाएगी और भूमि भूमिधारक को वापस कर दी जाएगी।उस विधि का लाभ प्राप्त करने के लिए जो आवश्यक है, वह यह है कि भूमि धारक जो इस विधि के तहत लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्होंने किसी भी अदालत से किसी भी कार्रवाई या प्रक्रिया को रोकने या विलंबित करने के लिए किसी आदेश प्राप्त नहीं किया होना चाहिए, ताकि व्याख्या केअंतर्गत केले अधिग्रहण करने या प्राप्त अर्थ की निर्धारण को देरी या रोकने वाले वो केवल उन भूमि धारकों के मामलों को कवर करे जो किसी भी अदालत से किसी भी कार्रवाई को रोकने या विलंबित करने के लिए कोई आदेश प्राप्त नहीं करते। हमारी राय में, गुजरात उच्च न्यायालय ने आक्षेपित फैसले में समान दृष्टिकोण अपनाने में सही था।

44. एक मामले में बेदखली या कार्यवाही पर रोक का आदेश राज्य सरकार को उन सभी भूमि मालिकों से कब्जा न लेने का अधिकार देता है जो रिट याचिका में पक्षकार भी नहीं थे। पुराने अधिनियम के तहत अवार्ड की घोषणा के बाद भी कब्जे या कार्यवाही पर रोक के आदेश को, पुराने अधिनियम के तहत दी गई रोक की अवधि को छोड़कर किसी विशिष्ट संदर्भ के अभाव में भी बाहर रखा जाना चाहिए। (अभय राम का मामला और ओम प्रकाश का मामला देखें (उपरोक्त)।

45. अधिनियम के बाद, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर अधिनियम की धारा 24 के दायरे की जांच करने वाला पहला निर्णय पुणे नगर निगम का मामला (उपरोक्त) है। यह एक ऐसा मामला था जहां नगर निगम ने कानून में अपेक्षित मुआवजे की राशि अदालत में जमा नहीं की, बल्कि भूमि अधिग्रहण कलेक्टर के पास जमा की। इस प्रकार, पुराने अधिनियम के तहत अनिवार्य अधिनियम के शुरू होने से पहले पांच साल की अवधि तक भूमि मालिकों को ऐसा मुआवजा नहीं दिया गया था। इसलिए, पुणे नगर निगम के मामले (उपरोक्त) में निर्णय, आगे दी गई दलीलों को कोई मदद नहीं देता है क्योंकि यह पांच साल से अधिक की अवधि के लिए क़ानून के संदर्भ में मुआवजा जमा न करने का मामला था।

46. भरत कुमार के मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका में भूमि मालिकों को कोई अंतरिम सुरक्षा नहीं दी गई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को केवल अधिग्रहीत भूमि में आवासीय संरचना से बेदखल करने पर रोक लगा दी। इसलिए, यहां तक कि उक्त निर्णय भी भूमि मालिकों के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क को कोई सहायता प्रदान नहीं करता है, यहां तक कि किसी भी अंतरिम सुरक्षा के अभाव में भी; कब्ज़ा राज्य द्वारा नहीं लिया गया था। इसलिए, उक्त आदेश भूस्वामियों के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्कों को आगे नहीं बढ़ाता है।

47. बिमला देवी के मामले (उपरोक्त) में, रिट याचिका (1994 का सीडब्ल्यूपी नंबर 512) के लंबित रहने के दौरान 12.1.1994 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा बेदखली पर रोक का अंतरिम आदेश दिया गया था और एसएलपी में यथास्थिति का आदेश दिया गया था

48. शिव राज के मामले (उपरोक्त) में, दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ भारत संघ की 10 अपीलें दायर की गईं, जिसमें उच्च न्यायालय ने 11.5.2007 को भूमि मालिकों द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी थी। अधिग्रहण की कार्यवाही को रद्द करने के दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के खिलाफ कोई अंतरिम आदेश नहीं था। चूँकि इतने वर्षों तक कब्ज़ा नहीं लिया गया था, अन्य बातों के साथ-साथ अपीलें ख़ारिज कर दी गईं क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के पहले के आदेश राज्य सरकार को बाध्य करते थे और इस कारण से भी कि पाँच साल से अधिक समय तक कब्ज़ा नहीं लिया गया था। विनोद कपूर द्वारा दायर सीए संख्या 1579/2010 की एक अन्य अपील में, जिसका फैसला शिव राज के मामले (उपर्युक्त) के साथ किया गया था, भूमि मालिकों द्वारा दायर रिट याचिका को दिल्ली उच्च न्यायालय ने 17.12.2004 को खारिज कर दिया था और समीक्षा याचिका 27-7-2007 को खारिज कर दी गई थी। रिट याचिका लंबित होने पर बेदखली पर रोक थी। एसएलपी में भूमि मालिकों के पक्ष में कोई अंतरिम आदेश नहीं दिया गया।इसलिए, न्यायालय ने भूमि मालिकों की अपील को इस कारण से स्वीकार कर लिया कि सात साल बीत जाने के बाद भी, कार्यवाही पर रोक लगाए बिना, प्रतिवादियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए, अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई ।

49. श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन मामले (उपरोक्त) में, 17.2.2005 को बेदखली पर रोक का अंतरिम आदेश दिया गया था, लेकिन रिट याचिका 27.4.2007 को खारिज कर दी गई थी । अपील में सुप्रीम कोर्ट का अंतरिम आदेश था. हालाँकि, पुणे नगर निगम के मामले में पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए और पद्मा सुंदरा राव के मामले (उपर्युक्त) का जिक्र करते हुए, यह माना गया कि कार्यवाही समाप्त हो गई है।

50. इस प्रकार, वास्तव में सुप्रीम कोर्ट ने बिमला देवी के मामले में और बालाजी के मामले (उपर्युक्त) में राज्य के खिलाफ अंतरिम आदेश होने के बावजूद भूमि मालिकों को लाभ दिया है। बिमला देवी के मामले (उपर्युक्त) में, न्यायालय ने पुणे नगर निगम के मामले (उपर्युक्त) में अपनाए गए पहले के दृष्टिकोण का पालन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि चूंकि मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया है और न ही अदालत में जमा किया गया है और भौतिक कब्जा भूमि मालिकों के पास है। इसलिए, अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई है। यह तथ्य कि कोई अंतरिम आदेश था या नहीं था, न तो न्यायालय के संज्ञान में लाया गया और न ही उस पर चर्चा की गई।

51. उपरोक्त निर्णयों में न्यायालय का ध्यान **ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और अन्य**[19] में सात-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णयों की बाध्यकारी मिसालों की ओर नहीं लाया गया, जिसमें कहा गया था कि न्यायालय की गलती से किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। न्यायालय ने कहावत ननक प्रो टंक को लागू किया, कि यदि न्यायालय को पहले जो करना चाहिए था उसमें देरी के कारण, लेकिन बाद में किया गया, किसी पक्ष को अंतराल में होने वाली घटनाओं के कारण नुकसान होता है, तो न्यायालय के पास इसका समाधान करने की शक्ति है। सूक्ति के संचालन का क्षेत्र सामान्यतः प्रक्रियात्मक है। "समयन्याय ने निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया: -

"**139. आपत्ति (h)** के संदर्भ में: यह तर्क है कि अदालत द्वारा की गई भूल के कारण अपीलकर्ता को हानि पहुंची है और यह न केवल अदालत की शक्ति के अंदर है बल्कि यह एक कर्तव्य भी है कि अदालत अपनी खुद की भूल को सुधारें ताकि कोई भी पक्ष

[19] एआईआर 1988 सुप्रीम कोर्ट 1531

अदालत की भूल के कारण हानि न उठाए: न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:-एक्टस क्यूरीए नेमिनेम ग्रेवबिट।

मुझे डर है कि न्यायिक निर्णय में सचेत निष्कर्षों पर इस कहावत का कोई अनुप्रयोग नहीं है । यह कहावत उन निर्णयों को फिर से खोलने और दोबारा सुनने की सामान्य शक्ति का स्रोत नहीं है, जिन्हें अन्यथा अंतिम रूप दे दिया गया है । यह कहावत एक अलग और संकीर्ण क्षेत्र में काम करती है। कहावत के संचालन का सबसे अच्छा उदाहरण ननक प्रो टंक के नियम के अनुप्रयोग द्वारा प्रदान किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि अदालत को पहले जो करना चाहिए था उसमें देरी के कारण, लेकिन बाद में किया गया, किसी पक्ष को अंतराल में होने वाली घटनाओं के कारण नुकसान होता है, तो अदालत के पास इसका समाधान करने की शक्ति है। सूक्ति के संचालन का क्षेत्र सामान्यतः प्रक्रियात्मक है। न्यायिक अभ्यास के एक भाग के रूप में जानबूझकर किए गए न्यायिक निष्कर्षों, तथ्यों या कानून या ऑपरेटिव निर्णयों में त्रुटियों को इस कहावत का सहारा लेकर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। "आपत्ति (h) में कोई सार्थक आधार नहीं है।"

52. बड़ी पीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि कहावत के संचालन का क्षेत्र प्रक्रियात्मक है और तथ्य या कानून के न्यायिक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना है।

53. **दाऊ दयाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[20] के रूप में रिपोर्ट किए गए तीन-न्यायाधीशों की बेंच के फैसले में व्यापारिक चिह्न अधिनियम, 1889 की धारा 15 के तहत अभियोजन शुरू करने की बात कही गई थी, जिसमें प्रावधान था कि अभियोजक द्वारा अपराध का पता चलने के एक वर्ष समाप्ति के बाद बाद कोई अभियोजन शुरू

[20] एआईआर 1959 एससी 433

नहीं किया जाएगा। यह माना गया कि शिकायतकर्ता को अपराध का पता चलने के एक वर्ष के भीतर न्यायालय का सहारा लेना आवश्यक है और यदि ऐसी शिकायत उक्त अवधि के भीतर प्रस्तुत की जाती है, तो वह सीमा के भीतर होगी। आगे यह भी माना गया कि यह कानून की एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होगी यदि जिस व्यापारी के अधिकारों का उल्लंघन किया गया है और जो आपराधिक न्यायालय के समक्ष मामले को तुरंत उठाता है, उसे फिर भी अदालत में होने वाली प्रक्रिया के मुद्दे में देरी के कारण निवारण से वंचित कर दिया जाता है। इसे निम्नानुसार आयोजित किया गया:-

“यह देखा जाएगा कि यदि शिकायतकर्ता को अधिनियम के तहत कार्यवाही का लाभ प्राप्त करना है तो उसे अपराध का पता चलने के एक वर्ष के भीतर अदालत का सहारा लेना होगा। इसका मतलब यह है कि यदि शिकायत ऐसी खोज के एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत की जाती है, तो धारा 15 की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं।यह याद रखना चाहिए कि परिसीमा की अवधि का उद्देश्य शिकायतकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करना और अपने अधिकारों के लिए मुकदमा चलाने में उसकी ओर से परिश्रम सुनिश्चित करना है, न कि अदालत के खिलाफ। अब, यह अधिनियमन के उद्देश्य को विफल कर देगा और व्यापारियों को उस सुरक्षा से वंचित कर देगा जो कानून उन्हें देने का इरादा रखता है, अगर हम मानते हैं कि जब तक अपराध की खोज के एक वर्ष के भीतर उनकी शिकायत पर प्रक्रिया जारी नहीं की जाती है, तब तक यह बाहर फेंक देना चाहिए. यह कानून की एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होगी यदि जिस व्यापारी के अधिकारों का उल्लंघन किया गया है और जो आपराधिक न्यायालय के समक्ष मामले को तुरंत उठाता है, उसे अदालत में होने वाली प्रक्रिया के मुद्दे में देरी के कारण निवारण से वंचित कर दिया जाता है।

54. इस तरह के निर्णय को **सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियो वैस्कुलर डिजीज**[21] में संविधान पीठ द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था, जिसमें मैक्सिम एक्टस क्यूरिया नेमिनेम ग्रेवाबिट का जिक्र किया गया था, न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

> "29. हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, वह इस तथ्य से पुष्ट होता है कि विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट के खंड 24.20 में, जिसे हमने यहां ऊपर उद्धृत किया है, दाऊ दयाल का उल्लेख किया है, जहां इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ एक विशेष अधिनियम से निपट रही थी अर्थात पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1889 पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1889 की धारा 15 में कहा गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध की खोज के एक वर्ष की समाप्ति के बाद कोई अभियोजन शुरू नहीं किया जाएगा। अपीलकर्ता का दावा था कि अपराध की खोज 26/4/1954 को हुई थी जब उनकी गिरफ्तारी हुई, और इस परिणामस्वरूप, 22/7/1955 को प्रक्रिया के मुद्दे की प्रारंभ होना, 1889 के वस्त्रसंकेत मार्क अधिनियम की धारा 15 के तहत प्रदान किए गए एक वर्ष की अवधि के बाहर था, और इसलिए कार्यवाही को सीमा के कारण रद्द कर दिया जाना चाहिए। इस विवाद को खारिज करते हुए, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -
>
> "6. xx xx xx"
>
> हालाँकि, यह न्यायालय 'संज्ञान लेने' शब्द के अर्थ से चिंतित नहीं था, लेकिन उसने इस दलील को स्वीकार नहीं किया कि जारी करने की प्रक्रिया की सीमा को

[21] (2014) 2 एससीसी 62

मजिस्ट्रेट के कार्य पर निर्भर किया जा सकता है। यह माना गया कि यदि शिकायत एक वर्ष की निर्धारित अवधि के भीतर दर्ज की गई थी, तो यह आवश्यकता को पूरा करती है। मजिस्ट्रेट द्वारा एक वर्ष बाद प्रक्रिया जारी करने की कार्यवाही के कारण परिवाद खारिज नहीं किया जा सका।

"37. हम इस दृष्टिकोण को इसलिए भी अपनाने के इच्छुक हैं क्योंकि आपराधिक अपराधों से संबंधित सीमा के मामलों में कुछ मात्रा में निश्चितता या निश्चितता होनी चाहिए। यदि, जैसा कि इस न्यायालय ने कहा है, संज्ञान लेना संदिग्ध अपराध के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग का उपयोग है, तो व्यक्तिपरक तत्व आता है। किसी मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। एक मेहनती शिकायतकर्ता या अभियोजन एजेंसी जो तुरंत शिकायत दर्ज करती है या अभियोजन शुरू करती है, गंभीर रूप से पूर्वाग्रहित होगी यदि यह माना जाता है कि सीमा की गणना के लिए प्रासंगिक बिंदु वह तारीख होगी जिस दिन मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है। शिकायतकर्ता या अभियोजन एजेंसी को पूरी तरह से मजिस्ट्रेट की दया पर छोड़ दिया जाएगा, जो कई कारणों से सीमा अवधि के बाद संज्ञान ले सकता है; प्रणालीगत या अन्यथा । किसी कर्मठ शिकायतकर्ता को इस तरह अदालत से बाहर फेंकना विधायिका का इरादा नहीं हो सकता। इसके अलावा, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शिकायतकर्ता अपनी शिकायत के निवारण के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाता है। वह चाहते हैं कि अपराध करने वालों के खिलाफ कार्रवाई हो । आपराधिक न्याय प्रणाली के तहत कार्य करने वाली अदालतें इसी उद्देश्य से बनाई गई हैं। यह मानना अनुचित होगा कि किसी मामले का संज्ञान लेने में अदालत द्वारा की गई देरी एक मेहनती शिकायतकर्ता को न्याय से वंचित कर

देगी। सीआरपीसी की धारा 468 की ऐसी व्याख्या टिकाऊ नहीं होगी और इसे असंवैधानिक बना देगी। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कानून की अदालत एक प्रावधान की व्याख्या करेगी जो उचित निर्माण के सिद्धांत को लागू करके कानून की वैधता को बनाए रखने में मदद करेगी, न कि किसी ऐसे सिद्धांत को लागू करने से जो प्रावधान को अस्थिर और संविधान के दायरे से बाहर कर देगा।**(यू.पी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम अयोध्या प्रसाद मिश्रा(2008) 10 एससीसी 139)"**

हमारे द्वारा पहुँचे गए निष्कर्ष को यह भी बढ़ा देता है कि कानून आयोग अपने चौवालिस्वे रिपोर्ट के पैरा 24.20 में, जिसे हमने ऊपर उद्धरित किया है, ने **दाऊ दयाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1959 SC 433** का संदर्भ दिया, जहां इस महाकोर्ट की तीन न्यायिक पीठ एक विशेष अधिनियम, अर्थात् पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1889 के साथ निर्णय देने का काम कर रही थी। पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1889 की धारा 15 में कहा गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध की खोज के एक वर्ष की समाप्ति के बाद कोई अभियोजन शुरू नहीं किया जाएगा। अपीलकर्ता का दावा था कि अपराध की खोज 26.4.1954 को हुई थी जब उनकी गिरफ्तारी हुई, और इस परिणामस्वरूप, 22.7.1955 को प्रक्रिया के मुद्दे की प्रारंभ होना, 1889 के पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम की धारा 15 के द्वारा प्रदान किए गए एक वर्ष की अवधि के बाहर था, और इसलिए प्रक्रिया को सीमा के कारण निरस्त कर दिया जाना चाहिए। इस विवाद को खारिज करते हुए, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की: (एआईआर पृष्ठ 435, पैरा 6)

"6. यह ध्यान दिया जाएगा कि यदि शिकायतकर्ता को अधिनियम के तहत कार्यवाही का लाभ प्राप्त करना है तो उसे अपराध का पता चलने के एक वर्ष के

भीतर अदालत का सहारा लेना होगा। इसका मतलब यह है कि यदि शिकायत ऐसी खोज के एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत की जाती है, तो धारा 15 की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। यह याद रखना चाहिए कि परिसीमा की अवधि का उद्देश्य शिकायतकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करना और अपने अधिकारों के लिए मुकदमा चलाने में उसकी ओर से परिश्रम सुनिश्चित करना है, न कि अदालत के खिलाफ। अब, यह उस प्रावधान के उद्देश्य को बिगाड़ देगा और व्यापारीयों को उन्हें देने का उद्देश्य नष्ट कर देगा, अगर हम यह मानें कि उनकी शिकायत पर प्रक्रिया केवल उनके द्वारा अपराध की खोज के एक वर्ष के भीतर जारी नहीं की जाती है, तो उसे खारिज कर देना चाहिए, जिसकी विधि ने उन्हें सुरक्षा प्रदान करने का उद्देश्य रखा था। अगर व्यापारी जिनका अधिकार उल्लंघित किए गए थे और जो जल्दी से मामले को क्रिमिनल न्यायालय के सामने उठाते हैं, फिर भी न्यायालय में प्रक्रिया के जारी होने में हुई देर के कारण सुधार नहीं पाते, तो यह कानून की दुखद स्थिति होगी।"

हालाँकि यह न्यायालय "संज्ञान लेने" शब्द के अर्थ से चिंतित नहीं था, लेकिन इसने इस दलील को स्वीकार नहीं किया कि जारी करने की प्रक्रिया को मजिस्ट्रेट के कार्य पर निर्भर किया जा सकता है। यह माना गया कि यदि शिकायत एक वर्ष की निर्धारित अवधि के भीतर दर्ज की गई थी, तो यह आवश्यकता को पूरा करती है। मजिस्ट्रेट द्वारा एक वर्ष बाद प्रक्रिया जारी करने की कार्यवाही के कारण परिवाद खारिज नहीं किया जा सका।“

“39. जैसा कि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने में पहले ही नोट कर चुके हैं, कानूनी सिद्धांतों से प्रकाश डाला जा सकता है। कानूनी सिद्धांतों का

उल्लेख भारत दामोदर काले और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2003) 8 एससीसी 599, जापानी साहू बनाम चंद्र शेखर मोहंती (2007)7 एससीसी 394 और राधामनोहारी (श्रीमती) बनाम वंका वेंकट (1993)3 एससीसी 4 में किया गया है। आपराधिक कानून का उद्देश्य अपराध करने वालों को दंडित करना है। यह प्रसिद्ध कानूनी मैक्सिम **नुलम टेम्पस ऑट लोकस ऑकेरिट रेजी** के अनुरूप है , जिसका अर्थ है कि एक अपराध कभी नहीं मरता है। साथ ही, यह कानून की नीति भी है कि सतर्क लोगों की सहायता की जाए, न कि सोते हुए की। यह लैटिन मैक्सिम **विजिलेंटिबस नॉन डॉर्मिएंटिबस जुरा सबवेनियंट** में व्यक्त किया गया है। अध्याय XXXVI सी.आर.पी.सी जो कुछ प्रकार के अपराधों, जिसके लिए कम सजा प्रदान की जाती है, के लिए सीमा अवधि प्रदान करता है, वह इस मैक्सिम से समर्थन प्राप्त करता है। लेकिन, यहां तक कि धारा 384 या 465 आई.पी.सी जैसे कुछ अपराध, जिनमें कम सजा है, के गंभीर सामाजिक परिणाम हो सकते हैं। इसलिए, विलंब की माफी के लिए, प्रावधान दिया गया है । शिकायत दर्ज करने की तारीख या कार्यवाही शुरू करने की तारीख को संहिता की धारा 468 के तहत गणना सीमा के लिए प्रासंगिक तारीख के रूप में मानना कानूनी मैक्सिम **एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट** द्वारा समर्थित है, जिसका अर्थ है कि न्यायालय का कार्य किसी भी व्यक्ति को पूर्वाग्रहति नहीं करेगा। यह बार-बार दोहराया जाता है कि संज्ञान लेने में अदालत की निष्क्रियता यानी की, संदिग्ध अपराध पर दिमाग लगाने में अदालत की निष्क्रियता को, मेहनती शिकायतकर्ता के लिए पूर्वाग्रह पैदा करने की अनुमति देना नहीं है। अध्याय XXXVI इस प्रकार इन तीन कानूनी मैक्सिम के अंतःक्रिया को प्रस्तुत

करता है। तथापि, इस अध्याय के उपबंधों की व्याख्या केवल इन सिद्धांतों के आधार पर नहीं की गई है। ये केवल मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में काम करते हैं।"

55. मैक्सिम **एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट** को ध्यान में रखते हुए या यहां तक कि इसकी अनुपस्थिति में, न्यायालय द्वारा दिया गया कोई भी अंतरिम आदेश पार्टियों के किसी भी अधिकार को प्रभावित नहीं करता है।न्याय वितरण प्रणाली के उचित कार्य के लिए यह आवश्यक है। एक बार जब न्यायालय ने कब्जे पर रोक लगाने का आदेश पारित कर दिया , तो राज्य कब्जा नहीं ले सकता था। यदि न्यायालय का कोई आदेश किसी व्यक्ति को कोई कार्रवाई करने से अक्षम करता है, तो "**नेमो टेनेटुर एड इम्पॉसिबिले**" का सिद्धांतलागू होगा, यानी की, यह सामान्य रूप से एक पार्टी को क्षमा करता है जो कर्तव्य का पालन करने में अक्षम है और कर्तव्य के प्रदर्शन की असंभवता है को एक अच्छा बहाना मानता है। फिर भी, लैटिन **मैक्सिम लेक्स नॉन कॉजिट एड इम्पोसिबिलिया**, यानी कानून एक आदमी को वह करने के लिए मजबूर नहीं करता है जो वह संभवतः नहीं कर सकता है। मैक्सिम "**इम्पोटेंशिया एक्स्क्यूसत लेगुम**" का मतलब है कि जहाँ कानून एक कर्तव्य या फ़र्ज़ बनाता है और पार्टी बिना किसी चूक के उसे पूरा करने में अक्षम है, और उसके पास कोई उपाय नहीं है ,वहां कानून सामान्य रूप से उसे अनदेखा करे देगा । चूंकि,राज्य के लिए कब्जा लेना असंभव था, इसलिए, अंतरिम आदेश के परिणामों का उपयोग राज्य के खिलाफ नहीं किया जा सकता है।

56. यहां तक कि अगर वर्तमान प्रावधानों की व्याख्या के लिए मैक्सिम द्वारा अधिकतम सीमा का विस्तार नहीं किया जा सकता, तो सामान्य सिद्धांत यह है कि पार्टियों के

अधिकारों की जांच उस दिन की जानी चाहिए, जब वह अदालत से संपर्क करता है और निर्णय में देरी किसी भी व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुंचाएगी। मामले का लंबित होना, किसी भी पक्ष को कोई लाभ प्रदान नहीं कर सकता। **सुरेश चंद बनाम कुलम चिश्ती** मामले में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **आत्मा राम मित्तल** (उपर्युक्त) के मामले का उल्लेख किया और कहा कि: -

> 17. तीसरी बात यह है कि इस तरह की व्याख्या **आत्मा राम मित्तल बनाम ईश्वर सिंह पुनिया (1988) 4 एससीसी 284** में इस न्यायालय द्वारा लिया गए दृष्टिकोण के विपरीत होगी, जिसमें यह माना गया था कि वाद में अदालत की गलती या निपटान में अदालत की देरी , के कारण किसी भी आदमी को पीड़ित नहीं किया जा सकता है। इसे अलग तरीके से कहें तो, यदि मुकदमा 10 साल की अवधि के भीतर निपटाया जा सकता है, तो किरायेदार धारा 39 के संरक्षण का हकदार नहीं होगा, लेकिन अगर मुकदमा 10 साल से अधिक लंबा हो जाता है तो किरायेदार इस तरह के संरक्षण का हकदार होगा। इस तरह की व्याख्या किरायेदार को मुकदमेबाजी करने के लिए प्रोत्साहित करेगी और यदि वह 10 साल की समाप्ति तक मुकदमे के निपटान में देरी करने में सफल रहता है तो वह धारा 39 का लाभ प्राप्त करेगा, अन्यथा नहीं। इसलिए हमारी राय है कि इस तर्क को कायम रखना संभव नहीं है।

57. संविधान पीठ के मामले में संविधान पीठ राम कुमार ने कहा कि पक्षकारों के मौलिक अधिकारों की जांचवाद की तारीख पर की जानी चाहिए, जब तक कि कानून इस तरह के अधिकार को पूर्वव्यापी नहीं बनाता है।

"28. उपर्युक्त निर्णयों से जो कानूनी स्थिति उभरती है वह यह है कि जब किसी अधिनियमन के निरसन के बाद एक नया कानून बनाया जाता है, तो ऐसा कानून वाद की तारीख या मुकदमे के अधिनिर्णय की तारीख पर पार्टियों के मूल अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है, जब तक कि ऐसा कानून पूर्वव्यापी न हो और अपील की अदालत फैसले के बाद अस्तित्व में लाए गएनए कानून पर विचार नहीं कर सकती है क्योंकि एक अपील में पार्टियों के अधिकारों को वाद की तारीख पर लागू कानून के तहत निर्धारित किया जाता है। हमारा विचार यह है कि किसी क़ानून के पूर्वव्यापी संचालन के खिलाफ एक धारणा है और आगे, एक क़ानून को उसकी भाषा की तुलना से अधिक पूर्वव्यापी संचालन नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि एक संशोधन अधिनियम, जो प्रक्रिया को प्रभावित करता है, उसको पूर्वव्यापी माना जाना चाहिय, जब तक कि संशोधन अधिनियम अन्यथा प्रावधान न दे। हम उक्त निर्णय में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं और यह मानते हैं कि धारा 15 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता है कि यह पूर्वव्यापी है, उन पक्षों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है जो उन्हें वाद की तारीख या प्रथम अदालत द्वारा डिक्री पारित होने की तारीख पर प्राप्त हुए थे। हमारायह भी विचार है कि वर्तमान अपील, कानून में परिवर्तन से अप्रभावित हैं, जो इन पार्टियों के मूल अधिकारों के निर्धारण से संबंधित है और उसका फ़ैसला पूर्व-अनुभव के कानून के प्रकाश में होना चाहिय जो डिक्री पारित होने की तारीख पर मौजूद था।"

58. अधिनियम की धारा 114 पुराने अधिनियम को निरस्त करती है और अधिकारों की बचत भी करती है। वह निम्नानुसार है: -

"114. निरसन और बचत- (1) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (1894 का 1) को निरस्त किया जाता है।

(2) इस अधिनियम में अन्यथा किए गए प्रावधान के अलावा, उप-धारा (1) के तहत निरसनको सामान्य की धारा 6 के सामान्य अनुप्रयोग को पूर्वाग्रह या प्रभावित करने के लिए नहीं माना जाएगा। निरसन के प्रभाव के संबंध में खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10)

59. ऐसे प्रावधानों के अवलोकन से पता चलता है कि अधिनियम को पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया गया है। उप-धारा (1) के तहत पुराने अधिनियम का निरसन, यह अधिनियम में निहित प्रावधानों के अधीन है और सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के सामान्य अनुप्रयोग को पूर्वाग्रह या प्रभावित नहीं करता है। **पुणे नगर निगम के मामले (उपर्युक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसेप्रावधानों की व्याख्या की गई है, यह मानने के लिए कि पुराने अधिनियम का निरसन अधिनियम की धारा 24 के प्रावधानों के अधीन है ।

न्यायालय ने निम्नलिखित आशय का निर्णय यह लिया :-

" 21. निगम की ओर से तर्क दिया गया है कि 1894 अधिनियम के तहत विषय भूमि अधिग्रहण कार्यवाही सभी तरह से समाप्त हो गई है और वे 2013 की धारा 114 (2) के मद्देनजर बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हैं, इसमें कोई योग्यता नहीं है, और इसे अस्वीकार करदिया गया है । 2013 अधिनियम की धारा 114 (1,) 1894 अधिनियम को निरस्त करती है।धारा 114 की उप-धारा (2),

हालांकि, निरसन के प्रभाव के संबंध में सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 को लागू करती है, लेकिन यह 2013 अधिनियम के प्रावधानों के अधीन है। धारा 24 (2) के तहत, 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही, कानूनी कल्पना द्वारा, उन मामलों को समाप्त माना जाता है जहां 2013 के अधिनियम के लागू होने से पांच साल या उससे अधिक समय पहले निर्णय दियागया है और भूमि का कब्जा नहीं लिया गया है या मुआवजा नहीं लिया गया है। धारा 24 (2) के तहत कानूनी कथा तब लागू होती है जब उसमे बताई गई शर्तें पूरी हो जाती हैं। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 की प्रयोज्यता धारा 24 (2) के अधीन होने के कारण, निगम केतर्क में कोई दम नहीं है।

60. इस प्रकार, कब्जा लेने या मुआवजे का भुगतान करने में राज्य की विफलता की स्थिति में कार्यवाही समाप्त होने के अधीन, पुराने अधिनियम के प्रावधान अर्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या उत्तरदायित्व जो पुराने अधिनियम के तहत अर्जित उपार्जित या व्यय किए गए थे। इसलिए, कार्यवाही, जो पुराने अधिनियम के तहत स्थगन का विषय थी, पुराने अधिनियम के प्रावधानों द्वारा ही शासित होगी ।

61. भारत कुमार के मामले, बिमला देवी के मामले और बालाजी के मामले (उपर्युक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के सामने, हमें कानून के अमूर्त प्रस्ताव पर अन्य निर्णयों का पालन करना मुश्किल लगता है। उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, जिनसे हम बंधे हुए हैं, हम मानते हैं कि न्यायालय द्वारा पारित किसी भी अंतरिम आदेश के बावजूद , कार्यवाही व्यपगत हो जाएगी।**महेंद्र यादव बनाम हरियाणा राज्य (सीडब्ल्यूपी संख्या 12066 की 2014**) के अनुसार इस मुद्दे की जांच करने की आवश्यकता है कि क्या अधिग्रहण को चुनौती देने वाली रिट

याचिका खारिज कर दी गई है , जिसमें स्थगन का अंतरिम आदेश था, क्या भूमि मालिक अधिनियम की धारा 24 का लाभ उठा सकते हैं। ऊपर दर्ज किए गए निष्कर्ष, उन सभी मामलों पर यथोचित परिवर्तन सहित लागू होंगे, जहां रिट याचिकाएं बर्खास्त कर दी गई है।

62. अधिनियम की धारा 24 उन रिट याचिकाओं के संबंध में कोई अपवाद नहींबनाती है, जिन्हें पहले खारिज कर दिया गया है ।

63. ऊपर चर्चा किए गए तरीके से कानून के सवालों का जवाब देने के बाद, रिट याचिकाओं को रोस्टर के अनुसार पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए पोस्ट किया जाए।

हस्ताक्षर माननीय न्यायमूर्ति

/- हेमंत गुप्ता,

हस्ताक्षर

माननीय न्यायमूर्ति / - जी.एस. संधावालिया

माननीय न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह-

64. मुझे माननीय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता, द्वारा निर्धारित निर्णय का अध्ययन करने का सौभाग्य मिला है।

65. अत्यंत सम्मान के साथ, मैं अपने विद्वान भाई माननीय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्त, द्वारा ऊपर दिए गए फैसले में की गई कुछ टिप्पणियों से सहमत नहीं हूं, जिसने मुझे एक अलग निर्णय लिखने के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त, मैं अपने विद्वान भाई के इस विचार से भी सहमत होने में असमर्थ हूं कि कार्यवाही, जो पुराने अधिनियम के अधीन स्थगन का विषय थी, पुराने अधिनियम के उपबंधों द्वारा ही शासित होगी। मेरे विचार में, पूर्ण पीठ को दिए गए संदर्भ का स्पष्ट शब्दों में उत्तर देने की आवश्यकता है, जिससे निर्णय की आगे की व्याख्या और परिणामस्वरूप उसके उपयोग या दुरुपयोग के लिए कोई गुंजाइश ना हो।

66. 2007 के सीडब्ल्यूपी संख्या 6860 में **महाराणा प्रताप चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम हरियाणा राज्य और अन्य**, एक डिवीजन बेंच, जिसमें से हम में से एक (माननीय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता) उसके सदस्य थे जिन्होंने भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 (संक्षेप में '2013 अधिनियम') की धारा 24 पर चर्चा करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सिविल अपीलसंख्या 5478 वर्ष 2014 की याचिका **भारत संघ और अन्य बनाम शिव राज और अन्य** में पारित निर्णय पर विचार किया था और यह देखा कि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष हिंदू राज के मामले (उपर्युक्त) में कोई तर्क नहीं दिया गया था कि न्यायालय का कोई कार्य किसी भी व्यक्ति को पूर्वाग्रह नहीं देगा।नतीजतन, निम्नलिखित संदर्भ दिया गया था: -

"इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कानून के सिद्धांत **'एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट '** को अदालत के संज्ञान में नहीं लाया गया है, क्योंकि इस सिद्धांत पर आधारित कोई तर्क नहीं उठाया गया है और ना ही विचार किया गया है, हमें लगता है की इस न्यायालय द्वारा दी गईरोक को, पांच साल की

अवधि निर्धारित करने के लिए, बाहर निकाला जा सकता है, को एक बड़ी पीठ द्वारा जांच की आवश्यकता है।

67. महिंदर यादव बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने बड़ी बेंच द्वारा निर्धारण के लिए निम्नलिखित संदर्भ दिया: -

> "(6) हमें यह प्रतीत होता है कि प्रश्न 'क्या 2013 अधिनियम की धारा 24 (2) का लाभ उन भूमि मालिकों के लिए भी स्वीकार्य है जिनकी रिट याचिकाएं पहले ही स्पष्ट या निहित रूप से खारिज कर दी गई हैं' और जो अंतरिम स्थगन आदेशॐ के आधार पर राज्य को उनकी अधिग्रहीत भूमि पर कब्ज़ा करने की अनुमति नहीं दी या कलेक्टर द्वारा प्रस्तावित मुआवजे के बावजूद मुआवजा लेने से इनकार कर दिया, इस पर भी बड़ी बेंच द्वारा विचार करने की आवश्यकता है।"

68. थोड़ी देर के लिए, भले ही मामले के कानून पर विचार न किया जाए और 2013 अधिनियम की धारा 24 (2) की स्पष्ट भाषा की जांच की जाए, तो यह सामने आता है कि धारा की भाषा स्वयं बहुत स्पष्ट है और दी गई व्याख्या के अलावा किसी अन्य व्याख्या में सक्षम नहीं है। अनुभाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

> "24. 1894 के अधिनियम संख्या 1 के तहत भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया कुछ मामलों में समाप्त मानी जाएगी।-
>
> (1) xx xx xx xx xx xx xx xx

(2) उप-धारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (1894 का 1) के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के मामले में, जहां उक्त धारा 11 के तहत एक अवार्ड शुरू होने से पांच साल या उससे अधिक पहले दिया गया है। लेकिन इस अधिनियम के तहत भूमि का भौतिक कब्जा नहीं लिया गया है या मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया है, तो उक्त कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी और उपयुक्त सरकार, यदि वह चाहे, तो ऐसी भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नए सिरे से शुरू करेगी।:

बशर्ते कि जहां एक अवार्ड दिया गया है और अधिकांश भूमि जोत के संबंध में मुआवजा लाभार्थियों के खाते में जमा नहीं किया गया है, तो, उक्त भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिग्रहण के लिए अधिसूचना में निर्दिष्ट सभी लाभार्थी इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मुआवजे के हक़दार होंगे।"

69. 2013 अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (2) उन मामलों का ध्यान रखती है जहां उक्त धारा में उल्लिखित कुछ शर्तें पूरी होने पर अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त मानी जाती है। 2013 अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1) 1894 भूमि अधिग्रहण अधिनियम संख्या 1 के तहत मामलों से संबंधित है। अब, सवाल यह है कि क्या उक्त अधिनियम पारित करते समय न्यायालयों द्वारा रोक का प्रभाव विधानमंडल के संज्ञान में नहीं था ? उत्तर नकारात्मक है। विधायिका के विवेक को मानना होगा। 1894 अधिनियम की धारा 6 और 11ए पहले से ही उन मामलों से संबंधित थीं, जहां न्यायालयों के स्थगन आदेशों के कारण कार्यवाही में देरी होती है। यहां तक कि 2013 के अधिनियम में भी कुछ विशिष्ट प्रावधान हैं जहां स्थगन आदेश में लगने वाले समय को बाहर रखा गया है। इसे विशेष रूप से धारा 19 (7) के प्रावधान और 2013 अधिनियम की धारा 69 के स्पष्टीकरण में प्रदान किया गया है। इससे पता चलता है कि विधानमंडल को न्यायालयों द्वारा पारित

निषेधाज्ञा आदेशों और उनके प्रभाव के बारे में जानकारी थी। तथ्य यह है कि 2013 के अधिनियम की धारा 24 (2) के प्रावधानों को लागू करते समय न्यायालयों द्वारा निषेधाज्ञा आदेशों के प्रभाव को विशेष रूप से छोड़ दिया गया था। 2013 के अधिनियम की धारा 24 (2) के प्रावधानों को पढ़ने से पता चलता है कि विधानमंडल ने ऐसा किया था कि न्यायालयों द्वारा दिए गए निषेधाज्ञा आदेशों के दौरान व्यतीत हुई अवधि, जिसके कारण अधिग्रहण को पूरा करने में राज्य की कार्रवाई में देरी हुई, को ध्यान में रखा जाना चाहिए। 2013 अधिनियम एक सामाजिक कल्याण कानून है, जो किसानों के लाभ के लिए बनाया गया है, जिनकी भूमि राज्य सरकारों द्वारा अंधाधुंध अधिग्रहण किया गया था और फिर कुछ अन्य उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया गया था ।

70. इस बिंदु पर मामले के कानून पर लौटते हुए, पुणे नगर निगम और अन्य बनाम हरकचंद मिसिरिमल सोलानी, (2014) 3 एससीसी 183 में 3 न्यायाधीशों की खंडपीठ ने विचार किया कि क्या उक्त मामले में, 2013 की धारा 24 में मुआवजा जमा करने के संबंध में निर्धारित शर्तें हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> "10. जहां तक धारा 24 की उप-धारा (1) का संबंध है, यह गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है। इसके द्वारा, संसद ने 2013 अधिनियम के अन्य सभी प्रावधानों पर इस प्रावधान को अधिभावी प्रभाव दिया है। यह खंड (ए) में प्रदान किया गया है जहां भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई है, लेकिन धारा 11 के तहत कोई अवार्ड नहीं दिया गया है, तो 2013 अधिनियम के प्रावधान मुआवजे के निर्धारण के संबंध में लागू होंगे। धारा 24 (1) के खंड (बी) में प्रावधान है कि जहां भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई है और धारा 11 के

तहत अवार्ड दिया गया है, तो ऐसी कार्यवाही 1894 अधिनियम के प्रावधानों के तहत जारी रहेगी जैसे कि वह अधिनियम निरस्त नहीं किया गया है।

11. धारा 24 (2) भी गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है। इस प्रावधान का धारा 24 (1) पर अधिभावी प्रभाव है । धारा 24 (2) अधिनियमित करती है कि 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के संबंध में, जहां 2013 अधिनियम के शुरू होने से पांच साल या उससे अधिक पहले एक अवार्ड दिया गया है और दो आकस्मिकताओं में से कोई भी संतुष्ट है, अर्थात ; (i) भूमि का भौतिक कब्ज़ा नहीं लिया गया है या (ii) मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया है; ऐसी अधिग्रहण कार्यवाही को समाप्त माना जाएगा। ऐसी अधिग्रहण कार्यवाही के समाप्त होने पर, यदि उपयुक्त सरकार अभी भी उस भूमि का अधिग्रहण करना चुनती है जो 1894 अधिनियम के तहत अधिग्रहण की विषय-वस्तु थी तो उसे 2013 अधिनियम के तहत नए सिरे से कार्यवाही शुरू करनी होगी। धारा 24 (2) से जुड़ा प्रावधान उस स्थिति से संबंधित है जहां 1894 अधिनियम के तहत शुरू किए गए अधिग्रहण के संबंध में एक अवार्ड दिया गया है और अधिकांश भूमि जोत के संबंध में मुआवजा लाभार्थियों के खाते में जमा नहीं किया गया है। धारा 4 अधिसूचना में निर्दिष्ट सभी लाभार्थी 2013 अधिनियम के तहत मुआवजे के हकदार बन जाते हैं।

71. सामान्य धारा अधिनियम, 1897 की धारा 6 की प्रयोज्यता पर भी विचार किया गया और यह माना गया कि सामान्य धारा अधिनियम, 1897 की

धारा 6, 2013 अधिनियम की धारा 24 (2) के अधीन है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे निम्नानुसार देखा गया:-

> "21. निगम की ओर से तर्क कि विषय भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही 1894 अधिनियम के तहत सभी मामलों में संपन्न हो गई है और वे 2013 अधिनियम की धारा 114 (1) धारा के मद्देनजर बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हैं खारिज किए जाने के योग्य है। धारा 114 की उप-धारा (2) 1894 के अधिनियम को निरस्त करती है। हालांकि, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 निरसन के प्रभाव को लागू करती है लेकिन यह 2013 अधिनियम के प्रावधानों के अधीन है। धारा 24 (2) के तहत, जहां 2013 अधिनियम के प्रारंभ होने तक अवार्ड पांच साल या उससे अधिक पहले दिया गया हो और भूमि का कब्ज़ा नहीं लिया गया है या मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया है तो 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही, कानूनी कल्पना के अनुसार, समाप्त मानी जाती है । धारा 24 (2) के तहत कानूनी कल्पना उसमें बताई गई शर्तों के संतुष्ट होते ही लागू हो जाती है। धारा 6 की प्रयोज्यता सामान्य धारा अधिनियम की धारा 24 (2) के अधीन होने के कारण, निगम के तर्क में कोई दम नहीं है।"

72. **बिमला देवी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2014) 6 एससीसी 583**, में फ़ैसला दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुनाया गया था और इसी तरह **भरत कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2014) 6 एससीसी 586**। शिव राज का मामला (उपर्युक्त) तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया था, जिसमें भरत कुमार (उपर्युक्त), बिमला देवी (उपर्युक्त) और पुणे नगर निगम (उपर्युक्त) मामलों पर विचार

किया गया था। शिव राज के मामले (उपर्युक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:-

> "22. **पुणे नगर निगम और अन्य बनाम हरकचंद मिसिरिमल सोलंकी**, **2014 (1) आरसीआर (सिविल) 880:** 2014 (1) में अदालत की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा 2013 अधिनियम के प्रावधानों पर विचार किया गया है। उक्त मामले में, किरायेदारों ने नौ रिट याचिकाएं दायर करके बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष अधिग्रहण की कार्यवाही को चुनौती दी थी, हालांकि ऐसी दो रिट याचिकाएं अवार्ड से पहले दायर की गई थीं और सात अवार्ड के बाद दायर किए गए थे। भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं की अनुमति दी और भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही को रद्द कर दिया और किरायेदारों से लिए गये कब्जे की बहाली सहित कुछ निर्देश जारी किए, जैसा कि उक्त मामले में था। । इस न्यायालय ने उस प्राधिकारी द्वारा दायर अपील में जिसके लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण करने की मांग की गई थी, और जिसे राज्य में निहित भूमि के रूप में कब्जा सौंप दिया गया था, ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया लेकिन न्यायालय उसमें दिए गए निर्णय की सत्यता के संबंध में योग्यता में प्रवेश नहीं किया, बल्कि यह माना कि 2013 अधिनियम के प्रावधानों के मद्देनजर निर्णय की सत्यता से निपटना इतना आवश्यक नहीं था, जो बिलकुल शुरुआत में ही भूमि के पुन: अनिवार्य अधिग्रहण का प्रावधान करता है।

73. "इसे आगे पैरा-23 में इस प्रकार देखा गया:

"23. xx xx xx xx xx xx xx xx xx xx xx

"21. धारा 24 (2) के तहत, 1894 अधिनियम के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही, कानूनी कल्पना के अनुसार, समाप्त मानी जाती है, जहां अवार्ड 2013 अधिनियम के प्रारंभ होने से पांच साल या उससे अधिक पहले दिया गया होऔर भूमि का कब्ज़ा नहीं लिया गया है या मुआवजे का भुगतान नहीं किया गया है। धारा 24 (2) के तहत कानूनी कल्पना उसमें बताई गई शर्तों के संतुष्ट होते ही लागू हो जाती है। सामान्य धारा अधिनियम की धारा 6 धारा 24 (2) के अधीन है इसलिए निगम के तर्क में कोई दम नहीं है।"

74. शिव राज सिंह के मामले (उपर्युक्त) में, भारत सरकार, शहरी विकास मंत्रालय, दिल्ली डिवीजन द्वारा जारी दिनांक 14.3.2014 के एक परिपत्र का भी संदर्भ दिया गया था, जिसमें कानूनी राय के आधार पर एक स्पष्टीकरण जारी किया गया था। भारत के सॉलिसिटर जनरल ने कहा कि मुकदमे के दौरान बिताई गई अवधि को पांच साल की गणना करते समय बाहर रखा जाना चाहिए। यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकालता है कि विशिष्ट तथ्य यह है कि कुछ मामलों में जहां अधिग्रहण की कार्यवाही को चुनौती दी गई है, वहां अदालतों द्वारा स्थगन आदेश हैं, विशेष रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ध्यान में लाया गया था। इसके अलावा, एक तर्क, जिसे उठाया जाना चाहिए था, लेकिन उठाया नहीं गया, ऐसा माना जाएगा कि उस पर विचार किया गया है और निर्णय लिया गया है।

75. इसलिए, मेरा विचार है कि 'एक्टस क्यूरिया नेमिनेम ग्रेवबिट' - का सिद्धांत कि अदालत का एक कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं

डालेगा या किसी अन्य सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा जहां क़ानून के प्रावधान स्पष्ट और साफ़ हैं। ये सिद्धांत कोई मूल नियम नहीं हैं और केवलअस्पष्टता की स्थिति में इन सिद्धांतों की सहायता ली जाती है। स्पष्ट प्रावधानों द्वारा, कानून के इन सामान्य या अमूर्त सिद्धांतों के प्रभाव को हमेशा ओवरराइड किया जा सकता है।

76. हालाँकि, वर्तमान संदर्भ की बहस के दौरान**, श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य,** 2013 की सिविल अपील संख्या 8700, के मामले में 10 सितंबर 2014 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा एक निर्णय दिया गया था। **श्री बालाजी के मामले (उपर्युक्त)** में, सभी विवाद, जिनकी वर्तमान संदर्भ का निर्णय करते समय ध्यान, रखने की आवश्यकता है, उनका उत्तर दिया गया था। न्यायालयों द्वारा स्थगन दिये जाने के प्रभाव पर विशेष रूप से विचार किया गया। **पुणे नगर निगम का मामला (उपर्युक्त)**, **पद्म सुंदर राव (मृत) और अन्य बनाम टी.एन. राज्य, और अन्य**, और **शिव राज का मामला (उपर्युक्त)** पर भी विशेष रूप से विचार किया गया और निर्णय लिया गया। एक विशिष्ट याचिका यह उठाई गई थी कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के मद्देनजर राज्य को भूमि मालिकों की भूमि पर भौतिक कब्ज़ा लेने से रोका गया था। **श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन मामले (उपर्युक्त)**में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

> 8. इसमें कोई विवाद नहीं है कि पंचाट देने से पहले ही रिट याचिकाएं दायर की गई थीं और तमिलनाडु राज्य के खिलाफ अंतरिम आदेश लागू हो गए थे और इसलिए, अधिग्रहण के तहत संबंधित भूमि पर भौतिक कब्जा न लेने में राज्य की कोई गलती नहीं थी। लेकिन 2013 अधिनियम की धारा 24(2) को बनाने के पीछे, विधान मंडल की मंशा इसके शब्दों और इस अधिनियम के अन्य प्रासंगिक प्रावधानों और संबंधित **केस ला**ॅ से छांटनी होगी, यह तय करने के लिए, कि गणना

में रोक/निषेधाज्ञा की अवधि को पांच साल की अवधि से बाहर करने की आवश्यकता है या नहीं।

9. 2013 अधिनियम की धारा 24 को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि 2013 अधिनियम की धारा 24(2) किसी भी अवधि को बाहर नहीं करती है, जिसके दौरान भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही किसी भी अदालत द्वारा दिए गए स्थगन या निषेधाज्ञा के कारण रुकी हुई थी। इसी अधिनियम में, धारा 19(7) का परंतुक धारा 19(1) की घोषणा के प्रकाशन की सीमा के संदर्भ में और धारा 69(2) के स्पष्टीकरण के संदर्भ में भूमि के बाजार मूल्य की गणना के लिए धारा 11 के तहत प्रारंभिक अधिसूचना और पंचाट की तारीख के बीच की देरी के लिए विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि वह अवधि जिसके दौरान किसी अदालत के आदेश द्वारा किसी रोक या निषेधाज्ञा के कारण अधिग्रहण की कार्यवाही रोक दी गई थी, उसे प्रासंगिक अवधि की गणना में शामिल नहीं किया जाएगा। मामले को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विधान मंडल ने जानबूझकर धारा 24(2) में निर्दिष्ट पांच साल की अवधि को बढ़ाने पर रोक लगाई है, भले ही न्यायालय या किसी भी कारण से स्थगन आदेश या निषेधाज्ञा के कारण कार्यवाही में देरी हुई हो। **पद्म सुंदर राव (मृत) और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य. (2002) 3 एससीसी 533** के मामले में इस न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप से चर्चा किए गए विषय पर कानून के मद्देनजर अदालत द्वारा इस तरह की चूक की आपूर्ति नहीं की जा सकती है।"

77. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी ध्यान में रखा कि 1894 अधिनियम की धारा 6 और 11 में, न्यायालयों द्वारा दिए गए स्थगन आदेशों के कारण अवधि को शामिल न करने के लिए एक विशिष्ट प्रावधान था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय

ने **श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन मामले (उपर्युक्त)** में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं: -

> "11. कानून स्पष्ट है कि जब मुख्य अधिनियम स्पष्ट और असंदिग्ध हो, एक परंतुक का कोई प्रभाव नहीं हो सकता है जिससे मुख्य अधिनियम से उस चीज़ को बाहर रखा जाएजो स्पष्ट रूप से उसकी स्पष्ट शर्तों के अंतर्गत आती है, जैसा कि **मद्रास और दक्षिणी महरत्ता रेलवे कंपनी लिमिटेड बनाम बेजवाड़ा नगर पालिका एआईआर 1944 पीसी 71** के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा कहा गया था और इस न्यायालय द्वारा **सीआईटी बनाम इंडो मर्केंटाइल बैंक लिमिटेड एआईआर 1959 एससी 713** के मामले में।
>
> 12. **हरकचंद मिसिरिमल (उपर्युक्त)** के मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का **भारत संघ और अन्य बनाम शिवराय और अन्य (2014) 6 एससीसी 564** के मामले में तीन न्यायाधीशों की एक अन्य पीठ द्वारा पालन किया गया है। उस फैसले के पैराग्राफ 25 और 26 में, इस न्यायालय ने भारत सरकार, शहरी विकास मंत्रालय, दिल्ली डिवीजन द्वारा दिनांक 14.03.2014 को जारी एक स्पष्टीकरण पर ध्यान दिया। उस मामले में निकाले गए परिपत्र के भाग से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि 2013 अधिनियम की धारा 24 (2) में पांच साल या उससे अधिक की अवधि भूमि-हारने वालों को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से निर्धारित की गई है और चुनौती के कारण मुकदमेबाजी में खर्च की गई अवधि पंचाट या भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही से निकली नहीं जा सकती।"

78. इसलिए, मेरा मानना है कि इस न्यायालय की दो डिवीजन बेंचों द्वारा पूर्ण पीठ को भेजे गए प्रश्नों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही स्पष्ट शब्दों में निर्णय लिया जा चुका है। अंतरिम रोक के प्रभाव या कोई रोक न होने के प्रश्न पर

विचार और निर्णय लिया गया है। इसलिए, **पुणे नगर निगम के मामले (उपर्युक्त), भरत कुमार के मामले (उपर्युक्त), बिमला देवी के मामले (उपर्युक्त)**और **शिव राज के मामले (उपर्युक्त)** में दिए गए निर्णयों को इस आधार पर अलग नहीं किया जा सकता है कि अंतरिम रोक थी या कोई अंतरिम आदेश नहीं था। **ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और अन्य**, में न्यायालय ने ननक प्रो टंक सिद्धांत को लागू करते हुए कुछ टिप्पणियाँ कीं। उक्त सिद्धांत का वर्तमान मामले में भी कोई अनुप्रयोग नहीं है। आगे यह देखा गया है कि हर्बर्ट ब्रूम की पुस्तक 'लीगल मैक्सिम्स' के अनुसार, 103 से अधिक कानूनी सिद्धांत हैं। मेरा सुविचारित विचार है कि कानून के स्पष्ट प्रावधानों या उच्च न्यायालय की किसी आधिकारिक घोषणा को इस आधार पर दरकिनार करने के लिए इन सिद्धांतों को लागू नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय द्वारा एक या अन्य कानूनी सिद्धांतों पर विचार नहीं किया गया था क्यूंकि उठाए गए सभी बिंदु में या जिन्हेउठाया जाना चाहिए था, उसे उठाया गया माना जाता है, उस पर विचार किया जाता है और निर्णय लिया जाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी है।

79. इसके अलावा, 2013 अधिनियम की धारा 24(2) गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है, इसलिए, इस मामले में क्षेत्र रखने वाले किसी भी अन्य अधिनियम का 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के प्रावधानों पर कोई अधिभावी प्रभाव नहीं होगा। इस प्रकार, उन मामलों में पुराने अधिनियम के लागू होने के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठता है जहां विभिन्न न्यायालयों द्वारा स्थगन आदेश दिए गए थे। इसलिए, मेरा सुविचारित विचार है कि **पुणे नगर निगम के मामले (उपर्युक्त), शिव राज के मामले (उपर्युक्त)** और **श्री बलाई नगर आवासीय एसोसिएशन के मामले (उपर्युक्त)** में निर्धारित कानून के

अनुसार, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6, 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के प्रावधानों के अधीन है।

80. जो ऊपर चर्चा की गई है, उसे ध्यान में रखते हुए, 2007 के सीडब्ल्यूपी संख्या 6860 शीर्षक **महाराणा प्रताप चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम हरियाणा राज्य और अन्य**, का उत्तर इस तरीके से दिया गया है कि एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट का सिद्धांत 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के प्रावधानों पर नहीं लगता और **शिव राज के मामले (उपर्युक्त), पुणे नगर निगम के मामले (उपर्युक्त) और श्री बालाजी नगर आवासीय एसोसिएशन (उपर्युक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, 2013 अधिनियम की धारा 24(2) के तहत 5 साल की अवधि निर्धारित करने के लिए न्यायालयों द्वारा दी गई रोक की अवधि को निकला नहीं जाएगा।

81. इसी प्रकार, 2014 के सीडब्ल्यूपी नंबर 12066 में जिसका शीर्षक **महिंदर यादव बनाम हरियाणा राज्य और अन्य** है, एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा, यह निर्धारित किया गया कि 2013 अधिनियम की धारा 24 (2) का लाभ उन भूमि मालिकों पर भी लागू होता है जिनकी रिट याचिकाएँ पहले ही स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से खारिज कर दी गई हैं और जिन्होंने अंतरिम रोक के आधार पर राज्य को अपनी अधिग्रहित भूमि पर कब्ज़ा करने की अनुमति नहीं दी या कलेक्टर द्वारा प्रस्तावित मुआवजे को लेने से इनकार कर दिया है, बशर्ते कि 2013 अधिनियम की धारा 24(2) की निर्धारित शर्तें पूरी हों।

हस्ताक्षर

कुलदीप सिंह, न्यायाधीश

82. बहुमत की राय को देखते हुए मामले को रोस्टर के अनुसार उचित बेंच के समक्ष रखा जाए।

हस्ताक्षर

हेमन्त गुप्ता, न्यायाधीश

हस्ताक्षर

जी.एस. संधावलिया, न्यायाधीश

हस्ताक्षर

कुलदीप सिंह,न्यायाधीश।

83. पंजाब और हरियाणा के विद्वान महाधिवक्ताओं के अनुरोध पर, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 132 के साथ पठित अनुच्छेद 134ए के संदर्भ में पंजाब और हरियाणा राज्यों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिए एक प्रमाण पत्र देना उचित समझते हैं क्यूंकि यह संविधान के तहत एक कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश की अवधि को बाहर रखा जा सकता है और क्या भूमि मालिक, जिसकी अधिग्रहण को चुनौती देती रिट याचिका, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत खारिज की जा चुकी है, क्या वह भूमि अधिग्रहण में उचित मुआवजा एवं पारदर्शिता का अधिकार, सुधार तथा पुनर्वास अधिनियम, 2013 की धारा 24(2) का लाभ बहुमत की राय में संदर्भित निर्णयों के आलोक में ले सकता है या नहीं।

हस्ताक्षर

हेमन्त गुप्ता, न्यायाधीश;

हस्ताक्षर

जी.एस. संधावालिया, न्यायाधीश

84. कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है। अपील के लिए प्रमाणपत्र अस्वीकार कर दिया गया है।

हस्ताक्षर

कुलदीप सिंह, न्यायाधीश

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

सिद्धांत रॉयल

प्रशिक्षु न्यायिक पदाधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

जगाधरी, हरियाणा